॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीहनुमतेनमः ।

श्रीभक्तमाल

सटीक, अर्थात्

स्वामी श्री १०८ नाभा जी कृत मूल छप्पै;

तथा

श्रीप्रियादासजी प्रणीत टीका कवित्त,

अनेक प्रतियों से बड़े परिश्रम से संशोधित

और

भक्ति सुधाविन्दु स्वाद"

भाषा वार्तिक तिलक

श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद

विरचित

ज़िला गया जी के वकील, श्रीसीतामढ़ी बुलाकीपूरनिवासी

बाबू श्रीबलदेव नारायण सिंह जी

ने

छपवाकर प्रकाशित किया ॥

"सत्ययुग, त्रेता, और द्वापर" पर्य्यन्त ।

श्रीकाशीजी] श्रीविश्वनाथपुरी [बनारस

पं. जगदम्बा शङ्कर मिश्र के प्रबंध से

"चन्द्रप्रभा" यन्त्रालय में मुद्रित ।

सन १९०४ सम्बत १९६१

न्यौछावर एक मुद्रा १)

॥ श्रीमंगलमूर्त्तये नमः ॥

॥ श्रीसीताराम ॥

श्रीमारुतिवीरकला की जय ।

(सो०) प्रणवौं पवन कुमार, खलबन पावक ज्ञान घर । जासु हृदय आगार, वसहिं राम शरचाप धर ॥

(दो०) तुमहि मातु पितु परमहित, तुम मम गुरु भगवान । "सौभाग्या" सियकिंकरी, विनवति श्री हनुमान ॥ १ ॥

सियपिय करुणा, नाम, गुण, "श्रीभक्तन" कौ टेक । बिरचि यथामति कपिकृपा, भक्तिरहस्य अनेक ॥ २ ॥

कपिकर कंजनि माहिं सोइ, अरपौं मन बच काय । राम दूत करुणायतन ! सो लीजे अपनाय ॥ ३ ॥

पुनि पुनि बिनवौं जोरिकर, मोहि कृपा करि देहु । श्री सिय सियपिय पद कमल, अविरल बिमल सनेहु ॥ ४ ॥

पुनि, गुरुकपि ! निज चरणरति, सियपद मम मन गेहु । सिय सेवा, दम्पतिचरण, भक्ति, सुसंगति देहु ॥

श्रीअयोध्याजी प्रमोदवन } "सौभाग्य कला" (रूपकला)

दीन श्रीसीताराम शरण भगवानप्रसाद । सम्वत् १८६१ ।

श्रीगणेशाय नमः। श्रीहनुमतेनमः।
॥ श्रीरामानन्दाय नमः ॥

शुद्धि-पत्र (अशुद्धि संशोधन)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९६	१३	सोमवंशीबिठूर- -निवासी	बिठूर निवासी
१९९	१०	पारमहंसी	पारमहंस
२००	७।८।१०	सम्प्रदा	सम्प्रदाय
२०१	२	पंथमें व	पंथ में
२०३	१६	महँ कछु	महँ सो कछु
२०७	३	जिसने	जो
२०९	२२	हा री	तिहारी
२१०	५	पैन	बनै न
२१०	१५	जात	जीत (सर्बजीतलाल)
२१२	१४	नीलमोरध्वज	(१८) श्रीनील जी
२१२	१५	(१९) ताम्रध्वज	(१९)श्रीमयूरध्वजजी; श्रीताम्रध्वज जी।
२१८	१३	बास कहूं	न बास कहूं
२३१	७	की लाट	को लौट
२३३	१७	८ ४६	५४६
२३५	४	५२९	६२९
२४२	१७	गिरा	गिरिजा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५३	२	मरि	भरि
२५७	१७	शवय	शक्य
२६३	२२	सहर	सहस्र
२६४	२३	टेरि टेरि ॥ १ ॥	टेरि टेरि ।
२६५	१	बिबिध	बिबुध
२७०	२३	क्यों	को
२७२	१७	ब्राह्मण	ब्राह्मणने
२७३	२	होके	होने से
२७५	४	नहुष	चन्द्रवंशी नहुष
२८७	१५	समर्थन	समर्पन
२९१	१९	तृतीयस्कन्धका	तृतीयस्कन्धका तथाकईश्लोक दशमस्कन्ध के
२९६	५।६	उठ के	उठा के
२९९	१६	पाईकै	पाइकै
३०१	१८	हरि	हारि
३०२	२१	बलि	बलि,८ रु
३०७	२	सखी	सखी और पूज्य
३१०	११	बाल्मीक	बल्मीक
३१७	१।५	देवहूति	देवहूती
३३०	६	बाढ़ी	बढ़ी

मूल २७ + टीकाकवित्त १०५ = १३२

इति श्री भक्तमाल के पूर्वखंड अर्थात्
सत्ययुग, त्रेता और द्वापर पर्य्यन्त
के भक्तों की सूची समाप्त ॥



श्रीमौद्गल्य ऋषीश्वराय नमः ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीहनुमते नमः ।

॥ श्रीरामानन्दाय नमः ॥



सुप्रसिद्ध सम्पादकीय समालोचना ।

श्रीकाशी "भारतजीवन"

८ अगस्त १९०४ ई० ।

("साहित्य-समाचार")

"श्रीभक्तमाल । टीका, तिलक और नामावली के सहित । श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद विरचित । छपाई सफ़ाई बहुत अच्छी है । विशेषता यह है, कि पुस्तक शुद्धता पूर्व्वक छपी है ॥"

श्रीकाशी कान्यकुब्ज सभा ।

श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद जी की रची हुई, "श्रीभक्तमाल जी" तथा प्रियादास जी कृत टीका का भी तिलक, "श्रीभक्तिसुधा विन्दु स्वाद" पुस्तक में सर-

लता और सुगमता ऐसी रक्खी गई है जिससे सर्व साधारण मनुष्य उसको अच्छी तरह समझ सक्ते हैं; क्योंकि पूर्व समय की हिन्दी और आधुनिक हिन्दी में बहुत अन्तर पड़ गया है। जैसे "पृथ्वीराज रायसो" की हिन्दी बड़ी विचित्र है वैसेही प्रियादास जी की टीका की हिन्दी भी अस्फुटार्थक है।

इसमें "स्थालीपुलाक" न्यायेन लिखा जाता है अन्य छापे में छपी हुई पुस्तक में खिचड़ी के भांति मिला हुआ पदच्छेद रहित (६९) कवित्त का आकार देखिये, और उसी कवित्त को तिलककर्त्ता ने पृष्ठ २६८ पद च्छेद, कामा (अल्प विश्राम), प्यारन्थिसिस (कोष), आदि देकर कैसा स्पष्ट कर दिया है तथा वार्तिक तिलक इसका कैसा हृदय ग्राही है कि जड़ बांध कर सीधी रास्ते से समझाया है सो देखने ही योग्य है।

और एक बात यह अपूर्व है कि जो जो कथा टीकाकारने छोड़ दी है उन्हे ढूंढ़ २ कर पूरी किया है।

छपाई तथा काग़ज़ सुन्दर है, और छप्पै के अनन्तर विषय सूची का टेबल् (यंत्र) देकर तब विषय उठाया है।

किन्तु यावत् कथा का विश्राम अपने ही इष्ट में बलात्कार से खींच कर किया है, पर यह भी साधारण काम नहीं है।

इसकी भाषा भी बहुत रमणीय, और कहीं कहीं पुनरुक्तियुक्त, है। वैष्णवनामावली अर्थात् (नवभक्तमाल) भी इसके आदि में है।

जगह जगह श्रीमानस रामायण आदि का, तथा संस्कृत भागवत आदि का, प्रमाण भी दिया है। अभी इस ग्रंथ का प्रथम भाग इस सभा को भेजा गया है।

श्रीकाशीजी टेढ़ीनींब (हस्ताक्षर) मणिराम शास्त्री
ता: ३ जुलाई सन् १९०४ सहकारीमंत्री, कान्यकुब्ज सभा

स्वामी श्री ६ गङ्गादास जी महाराज,

तथा

पण्डितवर श्री ६ रामवल्लभा शरण जी महाराज।

(श्री अयोध्या जी, श्रावण शुक्ला सप्तमी १९६१)

श्रीरामायण, श्रीभक्तमाल, श्रीभागवत और श्रीभगवद्गीता, समस्त वैष्णवों के प्राण तो हैं हीं॥ टिप्पनी तो लखनऊ और बम्बई में भी छपी ही है, परन्तु श्री १०८ भक्तमाल जी और भक्तिरसबोधिनी का तिलक आज तक हमारे देखने सुन्ने में नहीं आया है; इस अभाव को इस वार्तिक भाषा तिलक "भक्ति सुधा बिन्दु स्वाद" ने दूर किया।

छप्पय तथा कवित्त की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया हुआ है। चन्द्रप्रभा प्रेस की उत्तमता का कहना ही क्या है। इस तिलक की सहायता से अब साधारणतः सब को बड़ी सुभीता होगी; और प्रेमी जन तो अतिशय आनन्द प्राप्त करेंगे। अनेक कथा जो तिलककार ने लिखी हैं उनके संग्रह में भी, कुछ थोड़ा परिश्रम न हुआ होगा। जहां प्रबन्ध में बहुत गुण होते हैं, वहां दोषों का होना भी अवश्य ही है। किन्तु, हितकारी तिलककार की सच्ची दीनता प्रार्थना, उससे बढ़ी हुई है॥

श्रीगणेशाय नमः ।

॥ श्री जानकीवल्लभाय नमः ॥

श्री हनुमते नमः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः । श्री रामानन्दाय नमः ॥

॥ छप्पै ॥

पदपङ्कज बांछौं सदा, जिनके हरि नित उर बसैं ॥ योगेश्वर, श्रुतिदेव, अङ्ग, मुचुकुन्द, प्रियब्रत जेता । पृथू, परीक्षित, शेष, सूत, शौनक, परचेता, ॥ सतरूपा, त्रयसुता, सुनीति, सतीसबही, मन्दालस । यज्ञपत्नि, ब्रजनारि, किये केशव अपने बस ॥ ऐसे नरनारी जिते, तिनही के गाऊं जसैं । पदपङ्कज बांछौं सदा, जिनके हरि नित उर बसैं ॥ ॥ ६ ॥ (१०)

[जसैं=यशैं; बांछौं=याचौं]

वार्त्तिक तिलक ।

जिन जिन भक्तजनों के हृदय में श्रीहरि भगवान् नित्यही निवास करते हैं, तिन भक्तों के कमलरूपी चरणों की (मैं मधुपसम) सदा इच्छा करता हूं—

"जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, हरि सन सहज सनेह।
बसहिं निरन्तर तासु उर, सो हरि कौ निज गेह ॥"

(१) ९ (नव) योगीश्वर, इत्यादिक योगीश्वर वृन्द ।
(२) श्रीश्रुतिदेव जी,
(३) राजा श्रीअङ्ग जी,
(४) श्रीमुचुकुन्द जी,
(५) जगत विजयी श्री प्रियव्रत जी महाराज
(६) श्री पृथु जी
(७) श्री परीक्षित जी
(८) सहस्रानन श्री शेष भगवान्
(९) श्री सूत जी
(१०) श्री शौनकादिक
(११) श्री प्रचेता गण
(१२) श्रीसतरूपाजी; उनकी तीनों कन्या अर्थात्
(१३) श्री प्रसूती जी,
(१४) श्री आकूती जी,
(१५) श्री देवहूती जी ।
(१६) श्री सुनीती जी
(१७) श्री मन्दालसा जी
(१८) श्री सती (शिवा) जी
(१९) सम्पूर्ण सती (पतिव्रता) स्त्री वर्ग
(२०) श्रीमथुरावासिनी यज्ञ पत्नी समूह

(२१) श्री व्रजगोपिका वृन्द, जिन्होंने भगवान् को अपने वश कर लिया ॥ जय जय जय ॥

(२२) भगवत को इस प्रकार अपने हृदय में बसानेवाले पुरुष वा स्त्री वर्ग जितने हैं, तिन्हीं के सुयश को मैं नित्य गान करता हूं और करूंगा ॥

टीका । कवित्त ।

जिनही के हरि नित उर बसैं तिनही की पदरेनु चैनु देनु आभरण कीजिये । योगेश्वर आदि रस स्वादमें

प्रवीन महा, बिप्रश्रुतिदेव ताकी बात कहि दीजियै ॥ आए हरि घर देखि गयौ प्रेम भरि हियो ऊंचो कर करि, पट फेरि, मति भीजियै । जिते साधु संग, तिन्हैं विनय न प्रसंग कियो, कियो उपदेश "मोसो बाढ़, पांव लीजियै" ॥ ७३ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

जिन महानुभावों के हृदय में सर्व दुःख हरनहारे तथा मन हरनेवाले भगवान् सर्वदा बसते हैं, तिन्हीं के पदपंकज की सर्व सुखदेनेहारी धूरि को अपने मस्तक में सदा धारण करना चाहिये । तिन भक्तों में योगीश्वर आदिक प्रेमापराभक्तिरस के छके हुए परम प्रवीण प्रसिद्ध ही हैं ।

उनमें से, "श्रुतिदेव" नाम ब्राह्मण परम प्रेमी की वार्त्ता कहे देता हूं—

श्री श्रुतिदेव जी ।

एक समय श्रीकृष्णचन्द्र जी द्वारकाजी से श्रीविदेहपुर (जनकपुर) में निमिवंशी राजा श्रीबहुलास्वजी से जाके मिले; और साथही, उसी समय सब साथियों समेत दूसरे रूप से बिप्र श्रीश्रुतिदेवजी के घरमें भी कृपा करके गए । ये दर्शन करतेही परम प्रेम में भरे, भक्ति रस में मति को भिगाए, ऊंचे हाथों से, अपने बस्त्र को फिरा २ के, नाचने लगे । परन्तु श्रीकृष्ण भगवान् के

साथ में और जो सन्त थे, तिनको विनय प्रणाम आदर सत्कार इनने कुछ नहीं किया! तब, प्रभु ने इनके प्रेम विचित्रता को देखके स्वयं यों उपदेश किया कि "तुमने सन्तों का तो सतकार नहीं किया! इनको मुझ से अधिक जानके दण्डवत प्रणाम तथा पूजन करो"॥ ऐसा सुन, सुख मान, इनने वैसाही किया। चतुर्मासा भर दोनों के घर कृपा कर रहे; तब भी एक को दूसरे का समाचार नहीं मिला॥

योगीश्वर ।

नवो (९) योगीश्वरों के नाम श्री ग्रन्थ कर्त्ता जी आगे चलके, ९ (नवें) छप्पै अर्थात् १३ (तेरहवें) मूल में कहेंगे॥

राजा श्रीअङ्ग जी ।

राजा "अङ्ग" सोमवंशी विठूर निवासी बड़े धर्म्मात्मा थे; इनके पुत्र न था। ब्राह्मणों से यज्ञ कराया परन्तु देवतों ने (पूर्व पाप के कारण) यज्ञ स्वीकार न किया। बहुत विनयवश ब्राह्मणों ने वसु का यज्ञ किया; वसु महाराज ने प्रगट होकर हविष (क्षीरान्न) दिया; जिससे राजाबेणु उत्पन्न हुआ। परन्तु वह अपने धर्म्मात्मा पिता श्रीअङ्गजी की आज्ञानुसार नहीं चलता था।

अतः श्रीअङ्गजी चुपचाप अरण्य में जाकर भगवत के भजन में भली भांति लगे। भजन प्रभाव से परमधाम को गए॥

अङ्ग नाम के दूसरे राजा "अङ्ग प्रदेश" (पटना बिहार प्रान्त) के थे। इनके पुत्र श्री रोमपादजी बड़े भक्त हुए ॥

राजामुचुकुन्द जी।

श्री मुचुकुन्द जी श्री अयोध्याजी के राजा थे; देवतों की, लड़ाई में, बड़ी सहायता की; थकके एक पर्वत के कन्दरे में बिश्राम कर रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्र "काल यवन" के पीछा करने से, भागते भागते उसी खोह में पहुंचे; और अपना पीताम्बर श्रीमुचुकुन्दजी के शरीर पर उढ़ाकर आप कहीं छुप गए। कालयवन इन्हीं को श्रीकृष्णजी समझ कर उलटी पुलटी सुनाने लगा।

इनने आंखें खोलीं तो इनकी दृष्टि पड़तेही कालयवन मृत्यु को प्राप्त होगया। क्योंकि भक्तापराध का दण्ड शीघ्रतर मिलता है। और भगवान् ने स्वयं इस लिये उसको न मारा कि गर्गाचार्य्य का बचन था कि कालयवन किसी यदुबंशी के हाथ से न मरे ॥

(ऐसा सुना गया है कि यही श्रीमुचुकुन्द जी श्री जयदेव कविशिरोमणि हुए कि जिनका "गीतगोविन्द" प्रसिद्ध है) ॥

महाराज श्रीप्रियव्रत जी।

भगवान् श्रीस्वयंभूमनुजी तथा महारानी श्रीसत-

रूपा जी के पुत्र, श्री प्रियव्रतजी, पाँच बर्ष के ही जब थे श्रीनारद भगवान् के उपदेश से, विरक्त हो बनमें हरि भजन करने लगे। (चौ०) "जेतो श्रम संसृति हित कीजै। कसनहिँ तेतौ हरि मन दीजै"॥

महाराज श्रीमनुजी ने श्रीब्रह्माजी से कहा। तब दोनों प्रियव्रतजी को समझाने चले। इसलिये श्रीनारदजी ने आज्ञा देदी कि "वत्स! श्रीब्रह्माजी तथा श्रीमनु महाराज तेरे पास आते हैं, उनके बचन मानलेना"॥

श्रीब्रह्माजी के उपदेश से श्रीप्रियव्रतजी बिबाह कर गृहस्थ हुए। उनके दस बेटे, तीन ऊर्द्धरेता (विरक्त) और सात गृहस्थ कि जो सातो द्वीप के राजा हुए॥

ये महाराज ऐसे प्रतापी भक्त और तेजस्वी थे कि इनका प्रकाश सूर्य्य के तेज के तुल्य था; जब सूर्य्य नारायण अस्ताचल को जाते तब भी इनके रथ के प्रकाश और तेज से दिन बनाही रहता था। श्रीब्रह्माजी के उपदेश से इनने अपने तेज को ढांप लिया। तब सब को रात्रि का बोध होने लगा॥

(चौ०) लघुसुत नाम "प्रियब्रत" ताही। वेद पुराण प्रशंसत जाही॥ "गुरुशासन गुनि पुनि घर आयो। कियो राज्य रघुपतिपद ध्यायो"॥

श्रीप्रियव्रतजी ग्यारह अर्बुद वर्ष राज्य कर भगवत भजन करते हुए, शरीर का परित्याग करके परधाम को गए॥

राजा श्रीपृथु जी।

राजा श्री पृथुजी का नाम पहिले चौबीस अवतारों (मूल ५ छप्पै १ पृष्ठ ५८) में आचुका है॥

आप भगवत यश के ऐसे बड़े प्रेमी थे कि उसके श्रवण के निमित्त अपने कानों में दस सहस्र कर्णों का सामर्थ्य मांगा और पाया॥

राजा श्रीपरीक्षितजी।

हस्तिनापुर के राजा श्रीपरीक्षितजी ही के प्रति, परमहंस श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत सुनाया, कि जो सब पुराणों मे श्रेष्ठ तथा पारमहंसीसंहिता है; सब का सार और, संसार समुद्र के तरने की दीर्घ नौका (जहाज़) है॥

आप श्रीअर्जुन जी के पोता थे। भगवान् ने गर्भ में ही इनकी विशेष रक्षा की थी। आपने "कलियुग" को दण्ड किया था, और इसको बासके लिये पाँच ही स्थान दिये थे अर्थात् (१) हिंसा जहां हो; (२) मद्यपान जहां हो; (३) द्यूत (जूआ) जहां हो; (४) वेश्या जहां रहें; और (५) सुबर्ण पर।

आपको ५००४ बर्ष हुए॥

श्री शेषजी।

शेष सहस्र सीस जग कारण। जो अवतरेउ भूमि

भय टारण ॥ "चौदह भुवन सहित ब्रह्मण्डा । एक सीस सरसव सम मंडा" ॥

श्रीशेष भगवान्। श्रीक्षीरशायी प्रभु के सय्या तथा छत्र रूप से अखण्ड सेवा करते हैं और सहस्र मुख से शेषी (भगवत) का यशगान करते हैं। "अनन्त" के चरित्र का अन्त कौन पासकता है ? किस्से बर्णन हो ?

"श्रीसम्प्रदा" के प्रगट करनेवाले आचार्य्य आप ही हैं। इसी लिये श्रीसम्प्रदा को शेष सम्प्रदा के नाम से भी पुकारते हैं। आपकी ही सम्प्रदा "श्री रामानुज सम्प्रदा" कही जाती है जिसकी परम्परा यों है (१) नारायण (२) श्रीलक्ष्मीजी (३) श्रीविष्वकसेन (४) श्रीशठकोप (५) श्री श्रीनाथ (६) श्रीपुण्डरीकाक्ष (७) श्रीराममिश्र (८) श्रीयामुनाचार्य्य जी जिनके "आलवन्दारस्तोत्र" इत्यादि हैं (९) श्रीपूर्णाचार्य्य (१०) स्वामी अनन्त श्री रामानुज भगवान् ॥

श्रीसूतजी; श्रीशौनक जी ।

यह बात प्रसिद्ध है ही कि सब पुराणादिक के कीर्त्तन करनेवाले श्रीसूतजी हैं; एवं, उनके अठासी सहस्र श्रोताओं में श्रीशौनक जी प्रसिद्ध ही हैं ॥

श्री प्रचेता ।

ये दस भाई थे और दसों का नाम "प्रचेता" ही है; ये प्राचीनबर्ही के पुत्र थे ॥

पिता की आज्ञानुसार तप करने के लिये सिद्धिसर वा "नारायणसर" को जाते थे। पन्थ में व श्रीनारद जी मिले और कृपा करके भक्ति के लिये तप का उपदेश कर दिया। दश सहस्र बर्ष तप करने के अनन्तर, गरुड़ पर चढ़े आकर भगवत ने दर्शन तथा भक्ति का बरदान दिया, पुनः एकही लड़की से दसो भाई को बिबाह करने की आज्ञा भी दी। उससे "एक" प्रजापति का दूसरा जन्म हुआ, जिनको राज्य देकरके दसो भाई पुनः भगवत भजन करने के लिये बन में गए ॥

देवर्षि श्रीनारद जी कृपासिन्धु के उपदेश से ऐसी भक्ति की कि देह त्याग कर दिव्य शरीर धर भगवत के धाम को चले गए ॥

श्रीसतरूपा जी; और श्री १०८ कौशल्याजी।

महाराज श्रीस्वायंभूमनु की धर्मपत्नी, श्रीसतरूपा और महाराज श्री दशरथजी की महारानी श्री कौशल्या जी थीं ॥

(चौ०) सतरूपहिं बिलोकि करजोरे। "देवि ? मांगु बरु जो रुचि तोरे ॥" "जो बरु नाथ ! चतुर नृप माँगा। सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा ॥ प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगतहित तुम्हहिँ सुहाई ॥ तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल-उर-अंतरजामी॥ अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रमान पुनि सोई ॥ जे निज भगत नाथ ! तव अहहीं। जो

सुख पावहिँ जो गति लहहीं ॥ (दो०) सोइ सुख, सोइ गति, सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु । सोइ बिबेक, सोइ रहनि प्रभु! हमहिँ कृपाकरि देहु" ॥ (चौ०) सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बचरचना। कृपा सिंधु बोले मृदु बचना॥ "जो कुछ रुचि तुम्हरे मन माहीं । मैं सो दीन्ह सब संशयनाहीं ॥ मातु ! बिबेक अलौकिक तोरे । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे ॥"

श्रीसतरूपाजी श्रीसुरपुर में बसने के अनन्तर श्री १०८ अयोध्या जी में, मातु श्री १०८ कौशल्याजी महारानी हुईं, जिनकी भक्तिबश अखण्डैक परात्पर ब्रह्म प्रियतम प्रभु श्रीरामचन्द्र जी, श्रीअवध में आप्रगट हुए॥ अम्बा श्री १०८ कौशल्या महारानी जी की जय॥ मङ्गल मूल राम सुत जासू । जो कछु कहिय थोर सब तासू ॥ तेहि ते मैं कछु कहेउँ बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ॥ "कौन तासु महिमा कहौं, जासु सुवन श्रीराम । बिना काम सब कामप्रद, सहित काम नहिं काम ॥"

बारिधि रस वात्सल्य की कौशल्या वेला मनहुँ ॥

श्री प्रसूतीजी ।

श्री सतरूपा मनुजी की कन्या, श्रीदक्षजी की धर्म पत्नी, श्रीप्रसूती जी, अतिशय पतिब्रता तथा भगवद्

भक्तिपरायणा हुईं। आपकी स्तुति किससे हो सकती है। तीनों बहिनें एक से एक बढ़के प्रशंसनीय हुईं॥

श्रीआकूती जी।

महाराज श्रीस्वायंभूमनु और महारानी श्रीसतरूपा जी की नन्दिनी श्रीआकूती जी का विबाह, श्रीरुचिऋषिजी से हुआ। इनकी भगवद् भक्ति तथा पातिव्रत्य की प्रशंसा कौन कवि कर सकता है॥ आप तीनों श्रीउत्तानपादजी और श्रीप्रियव्रत जी की भगिनी (बहिन) थीं॥

श्रीदेवहूती जी।

(चौ०) स्वायंभूमनु अरु सतरूपा। जिन्हतें भइ नरसृष्टि अनूपा॥ दम्पति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका॥ देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रियनारी॥ आदि देव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥

"देवहूति, तहँ करि दृढ़ नेमा। करि सियपिय पद पूरण प्रेमा॥ रही जगत महँ कछु काला। लग्यो न तेहि संसृत जंजाला"॥ जो स्वयं हरि (कपिलजी) की माता हुईं, और जिन्ह देवी ने साक्षात् भगवत से उपदेश पाया, उनकी स्तुति जहां तक की जासके सो थोड़ी ही है तीनों बहिनों की कथा उक्त प्रकार से है॥

श्रीसुनीती जी।

"ध्रुव हरि भक्त भएउ सुत जासू।" ये महारानी, महाराज उत्तानपाद की धर्म पत्नी, भक्तराज श्रीध्रुव जीकीमाता हैं, जिनने अपने प्रियपुत्र(श्रीध्रुवजी) को पांच वर्ष की अवस्था में हरि भजन परायण कर दिया॥

" छोड़ि भवन बन गवन कीजिये। रघुपति पद रति रंग भीजिये॥ श्रीहरि संकट काटनहारे। दूज न रक्षक और तिहारे"॥ "हरिभरोस करि कियो न मोहू। पंच वर्ष बालक तजि छोहू॥ चढ़ि बिमान सुन्दर सुखछाई। गइ बैकुंठ निसान बजाई॥ ध्रुवहु लख्यो निज नैन उठाई। गवन करत आगू निज माई॥" पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्तजासु सुत होई॥

श्रीमन्दालसा जी।

श्री सीताराम कृपासे श्री मन्दालसा जी ने ऐसा पन किया कि "जौन जीव मम गर्भहिं आवै। सो पुनि जन्म मरण नहिं पावै। भगवद्भक्त होके आवागवन से छूटजाय" आपने अपने पिता से यह बिनय किया कि "यदि मेरा बिवाह कीजिये तो ऐसे पुरुष से कीजिये कि जो 'दूसरी स्त्री के पास नहीं जाने, की प्रतिज्ञा करले"॥ इसीके अनुसार आप का बिबाह राजा रति-ध्वज (प्रतर्दन) से हुआ श्री मन्दालसा कथा श्री प्रियादासजी आगे चलके कहेंगे॥

इनके जो पुत्र होता था, श्रीमन्दालसा जी उसको बचपनही से ऐसा उपदेश किया करतीं कि वह ग्यारहवें ही बर्ष में तीक्ष्ण विरक्त हो, हरि भक्त परम अनुरक्त हो जाता था। इसी प्रकार से जब पांच छ पुत्र विराग और अनुराग पूर्वक हरि भजन परायण हो ही गए, तब राजा ने बड़ी युक्ति से रानी श्रीमन्दालसा जी से यह बर मांग लिया कि "यह सातवां बेटा अलर्क (सुबाहु) मेरे लिये रहने दो कि राज काज प्रवृत्ति नीति सीख सके"। बचन बश रानी ने यह बात स्वीकार की। और एक श्लोक लिखके एक यन्त्र में अपने इस लघुतम पुत्र सुबाहु के दक्षिणहस्त में बांध के यह सिखा दिया कि "वत्स! जब तुझपर कोई कष्ट पड़े तो तू इस यन्त्र को खोलके पढ़ना"। पुत्र को राज दिलवा रानी श्रीमन्दालसा जी पति को सुन्दर उपदेश कर, हरि भजन के निमित्त पति के साथ साथ बन को गईं; और सुबाहु (अलर्क) राज्य करने लगा॥

बन में अपने पुत्रों को बासनाविगत श्रीहरि पद रत देख अति प्रसन्न हो यह बोलीं कि "हे पुत्र! सबसे छोटे सुत की मुझे चिन्ता है उसको भी किसी प्रकार से निवृत्ति मार्ग में लावो"॥

सबसे बड़े पुत्र जी ने मातुवचन सीस धर, घर आ सबसे छोटे भाई (राजा) से उचित वार्त्ता करके

देखा कि 'वह रजोगुण में बहुत ही डूबा है और उस प्रमाद में उपदेश कुछ काम नहीं करता' । तब उनने अपने मामू काशी राज को उभारा, आधा राज देने का बचन दिया, और यों उसने इनके छोटे भाई पर चढ़ाई की ॥

इस संकट के समय, सुबाहु (अलर्क) ने अपनी माता के दिये यन्त्र को खोलके पढ़ा (चौ०) "करै न संग कबहुँ केहु केरी । करै तो सन्त हि संग घनेरी ॥"

(श्लो०) "संगः सर्वात्मना त्याज्यः सचेद्दातुं न शक्यते। ससद्भिः सह कर्त्तव्यः संगः संगारिभेषजम् ॥१॥ शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि संसारनिद्रां त्यज स्वप्नरूपां" मन्दालसा वाक्यमुवाच पुत्रम् ॥ २ ॥

यह पढ़तेही श्रीसीताराम कृपा से श्री माता के आसीस से इसबचन का ऐसा अधिकार इनके चित्त पर हुआ कि उसीक्षण वहीं से बन की ओर चल निकले ॥ श्रीरामकृपासे श्रीदत्तात्रेय जी मिले । (बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेउ राम तुम शमन विषादा") उनके सत्संग के उपरान्त, प्रसन्नतापूर्बक अपने बड़े भाई जी से जा मिले तथा माता के चरण पर गिरे और पिता एवं सब भाइयों के सत्संग का आनन्द पाया । सब मिल भगवद्भजन करने लगे ॥ (दो०) "ऐसी श्री

मन्दालसा, राम भक्त सिरताज। पति सुत तारण भव उदधि, आपुहिँ भई जहाज॥"

यह घटना सुन वह राजा भी, कि जिसने अलर्क (सुबाहु) पर चढ़ाई कर सुबाहु के जाने पर राज कर रहा था, अपने पुत्र को राज्य दे उन्ही के पास जा भगवद्भजन परायण हो गया॥

श्रीमन्दालसा जी की जय।

श्री सतीजी।

दक्षसुता श्री सती जी महारानी की कथा, श्री शिव जी की कथा के अन्तर्गत, पृष्ठ ८२।८३ में हो चुकी है॥

"सिय बेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परि हरी। हर बिरह जाइ बहोरि पितु के यज्ञ योगानल जरी॥"

यज्ञपत्नी (श्रीमथुरानी चौबाइन)

भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने गऊ चराते समय एकदिन चतुर्बेदीविप्रों (चौबे लोगों) को, यज्ञ करते देखा; अपने सखाओं को उनसे भोजन मांगने के लिये भेजा; चौबे लोगों ने नहीं दिया; सखा सब लौटआए॥

पुनः, प्रभु ने उनको भेजा कि "चौबाइनों (उनकी स्त्रियों) से मांगना"। ब्रजचन्द महाराज का नाम सुन्तेही वे सब अतिशय प्रेम से (अपने पतियों की आज्ञा के विरुद्ध) थालियों में भोजन व्यञ्जन ले ले बन में

पहुंच, श्रीनन्दनन्दन महाराज को सखाओं समेत भोजन करा, मनमानी भक्ति का बरदान पा, घर घर आ मंगलकारिणी हुईं ॥

(सवैया)

"रूप गुन्यो प्रथमै सुनिकै हरि देखन की अति लालसा जागी। आय प्रत्यक्ष लखी तिनको अपने को गुनी जगमें बड़भागी॥ श्रीरघुराज अनूप स्वरूप हिये धरि मूंदि दृगैं अनुरागी। मोहन को मिलिके मनमें द्विजनारि बूझाइ दई बिरहागी॥"

श्रीगोपिका बृन्द।

"प्रेम"—हा! इस शब्द (प्रेम) के तो सुन्तेही हृदय की कुछ औरही दशा होजाती है; नेत्रों के सामने एक व्यवधान सा आजाता है। प्रिय पाठक! संसार में ऐसा कौन सा अन्तःकरण है कि जिसपर इस तीक्ष्ण शस्त्र ने अपना कठिन घाव न किया हो? चाहे थोड़ा चाहे बहुत।

परन्तु कहीं कहीं तो इसने ऐसी अपूर्व तथा विलक्षण दशा प्रगट की है कि जिसके सुन्ने समझने से बड़े बड़े कठोर चित्तवालों के नयनों से भी मघा की सी झड़ी लग जाती है। श्री ब्रजगोपियां ज्ञान और भक्ति की खानि वरञ्च साक्षात परा प्रीति ही तो थीं।

"श्री नारद भक्ति सूत्र" देखिये। वेद, ब्रह्मा, शिव, शेष, सनकादि, गणेश, नारद, शारदा, सूत, श्री नाभास्वामी, श्री तुलसीदास जी, श्री सूरदास जी, इत्यादिक बड़े बड़े कुशल, कोई भी तो श्री ब्रजगोपिकाओं की पूरी प्रशंसा न कर सका पर, अपनी अपनी बाणी को कृतार्थ करने के हेतु कोई कुछ न कुछ कहे बिन रहा भी तो नहीं ॥

आज तक साधारण लोक भी इनके प्रेम को गाते ही हैं। श्री ब्रज के कुंज कुंज घर घर हाट घाट बाट से सुन्दरियों की ऐसी पुकार सुनाई देती है कि "हायश्याम! मिलिहौ कबै? तुम बिन छिनु युग जात"१

ऊधो! जोग कहत हैं काको?
की दधि माखन के चाखन को, लाखन आखन ताको।
की जमुना तट पनघट ऊपर घट पटकन लीला को॥
की मधुबन संग श्याम बिहरिबो, हरिबो चीर अबला को।
की मुरली की तान मनोहर प्रान हरी नहि थाको॥
की रस रास बास में बसिबो हंसिबो हेरि हहा को।
हौं तो गई गुजरी उनही पै बांकी चितौनि जाको
इनते कछू और नहिं चाहों पावों "जीत" पिया को॥२॥
कबसे पियारे तिहारे दरस को, तरसत हैं मोरे नैन–राम।
जोहत बाट कपाट सो लागी, आठो पहर दिन रैन–राम॥
ऐसी सुरतिया हा री बसीहै, पलको न लागत दैन–राम।
जानों न ठांव कहां तुम छाये, आये नहीं सुधि लैन–राम॥

पतियां की बतियाँ कोकौन चलावे,नेकहु संदसवोसरेन-राम
कासो कहूं कोऊ सुनत न मोरी, बिछुरन की तोरी बैन-राम
जो कोउ सुनत करेजवा है थामत, बिसरावत सुख चैन-राम
आवो पै आवो देखावोछटा छवि,नैना नोकीले वपैन-राम
जो नहि आवो पठावो खबरिया, ऐसी निठुरता पैन-राम
अन्तर की गति जाननहारो, तुम बिन कोऊ तो है न-राम
जो मन भावे करो सोई प्रीतम, जीत कबहुं बिसरैन-राम३

माधो ! कही न जाति गति ब्रज की । &c. &c. ॥ ४ ॥

कहि न जात बृज की कछु बतियां ॥
देखत ही मोको उठिधाईं ग्वाल गोपिका जतियां ।
छिन की औरै दसा गोसाईं हां की औरै रतियां ॥
नहि प्रतीत कोऊ उर आनत रहत वैसिये पतियां ।
काह कहूं कहि जात न मोपै भरि आवत हैं छतियाँ ॥
जीत आपही जाय तो देखो निबहत है केहि भतियां॥५॥

(सर्व्वजाल ढाल)

॥ सवैया ॥

सुत दारा औ गेहकी नेह सबै तजि जाहि बिरागी निरन्तर ध्यावैं। यम नेम औ धारना आसन आदि करैं नित योगी समाधि लगावैं ॥ जेहि ज्ञान औ ध्यान ते जानैं कोऊ औ अनादि अनन्त अखण्ड बतावैं। ताही अहीर की छोहरियां, छछिया भर छांछ पै, नाच नचावैं ॥६॥

यह श्लोक "यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः

शनैः प्रियदधीमहि कर्कशेषु। ते नाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषं नः"
(जो दशमस्कन्ध का प्राण कहा जाता है,) सो कैसे अनूठे चित्त से निकला है॥

गोपियों के प्रेम सा प्रेम, न तो होनेवाला, न है, और न हुआ; हां श्री जनक नगर की युबतियों की प्रीति और श्रीरघुवीरचरणानुरक्ति, का क्या कहना॥ (चौ०) कहि न सकहिँ सत शारद शेसू। वेद बिरंचि महेश गनेसू॥ सो मैं कहउँ कवनि बिधि बरनी। भूमि नाग सिर धरइ कि धरनी॥

॥ छप्पै॥

अंघ्रीअम्बुज पांशु को जनम जनम हौं जाचिहौं॥ प्राचीनबर्हि[1], सत्यव्रत[2], रहुगण[3], सगर[4], भगीरथ[5],। [6]बाल्मीकि[7], [8]मिथिलेश[9], गए जे जे गोबिंद पथ॥ रुक्माङ्गद[10], हरिचन्द[11], भरत[12], दधीचि[13] उदारा। सुरथ[14], सुधन्वा[15], शिविर[16], सुमति अति बलि-की-दारा[17],॥ नील मोरध्वज[18], ताम्रध्वज[19], अलरक[20] की कीरति राचिहौं। अंघ्री अम्बुज पांशु को, जनम जनम हौं जाचिहौं॥ ७ (११)

वार्त्तिक तिलक ।

इन भक्तों के चरण कमल की धूरि (पांशु) को, मैं जन्म जन्म याचूंगा

इन्ही भक्तों की रङ्गीली कीर्त्तियों से मैं रँग जाऊंगा॥

(१) श्री प्राचीनबर्हीं जी
(२) श्री सत्यव्रत जी
(३) श्री रहूगण जी
(४) श्री सगर जी
(५) श्री भगीरथ जी
(६) महर्षि श्रीबाल्मीकिजी
(७) श्री बाल्मीकिजी,दूसरे
(८) श्रीमिथिलेशजी महाराज
(९) जो जो श्री विदेहवंशी श्री भगवद्भक्ति के पथ में चले, ते सब
(१०) श्री रुक्माङ्गद जी
(११) श्री हरिश्चन्द्र जी
(१२) श्री भरत जी
(१३) परमोदार श्री दधीचिजी
(१४) श्री सुरथजी
(१५) श्री सुधन्वा जी
(१६) राजा श्री शिवि जी
(१७) अति सुमति श्री बलिपत्नी रानी श्री बिन्ध्यावली जी
(१८) श्री नीलमोरध्वज जी
(१९) श्री ताम्रध्वज जी
(२०) श्री अलर्क जी

टीका । कवित्त ।

जन्म पुनि जन्म को न मेरे कछु सोच, अहो ! सन्तपद कंज रेनु सीस पर धारिये । प्राचीनबर्हि आदि कथा परसिद्ध जग, उभै बालमीकि बात चित्त तें न

टारिये ॥ भए भील संग भील, ऋषि संग ऋषि भए, भए राम दरशन, लीला विसतारिये । जिन्हें जग गाय कि हूं सकै ना अघाय चाय भाय भरि, हियो भरि, नैन भरि ढारिये ॥७४॥

वार्त्तिक तिलक।

अहो ! मुझ की इस बात का तो कुछ भी शोच नहीं है कि मोक्ष न पाके जगत में बारम्बार जन्म लूं, क्योंकि जन्म लेके यदि सन्तों के चरण कमल की रज सीस पर धारण करूं तो मुक्ति से भी अधिकतर सुख मानूंगा । प्राचीनबर्हीं आदिक भक्तों की कथा श्री मद्भागवत आदि ग्रन्थों से जगत में प्रसिद्ध ही है ॥ परन्तु महर्षि श्री बाल्मीकि जी, तथा दूसरे बाल्मीकि जी, इन दोनों भक्तों की कथा चित्त से न टालना चाहिये क्योंकि दोनों की वार्त्ता अनोखी हैं ॥

महर्षि श्री बाल्मीकि जी ।

आदि कवि श्री बाल्मीकिजी भिल्लों का संग पाके भिल्ल ही होगए; पुनः श्रीसप्तर्षि के सत्संग से महर्षि होगए, कि साक्षात् श्री सीतारामलक्ष्मणजी ने आपके आश्रम में जाके दर्शन दिया ॥

आपने विस्तार पूर्वक श्री रामायणलीला को गान किया, कि जिसके श्रवण अनुकथन से संसार के सज्जनों को किसी प्रकार से तृप्ति होती ही नहीं। "राम चरित

जे सुनत अघाहीं । रस विशेष जाना तिन नाहीं ॥ ” वरंच श्रवण और गान करने पर अत्यन्त चाव भाव हृदय में भर आता है। और नेत्रों से प्रेमाश्रु का प्रवाह ढलने लगता है ॥

(सो०) बन्दौं मुनि पद कंज, रामायण जिन निर्मएउ। सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित ॥ श्रीबाल्मीकिजी थे तो ब्राह्मण परन्तु भीलद्वारा पाले गए तथा भीलनी ही से बिबाह भी हुआ। पथिकों को मारना लूटना यही उनका उद्यम था। “को न कुसंगति पाइ नशाई” । करुणाकर हरि की इच्छा से एक दिन श्रीसप्तर्षि (१ कश्यप २ अत्रि ३ भरद्वाज ४ बसिष्ठ ५ गौतम ६ बिश्वामित्र और ७ जमदग्नि) उसी ओर से जा निकले । इन्हें भी जब आपने लूटना मारना चाहा तो महात्माओं ने यों उपदेश किया कि “रे द्विजाधम ! (दो०) जो तेरे यमदण्ड में, भागी होय न कोइ ! तौ कत कीजत पाप हठि, घोर दण्ड जिहि होइ ? ” (चौ०) सुत तिय उत्तर दियो प्रचण्डा। “हम नाहीं भागी यमदण्डा ॥” श्रीसीताराम कृपा से महाभागवत सप्तर्षि के दर्शन सम्भाषण से उनकी किरातबुद्धि जाती रही; विरक्ति तथा सुबुद्धि उत्पन्न हुई; “पाहि पाहि” कह, चरण पर गिर, अपने कल्याण का उपदेश पूछा। दिव्यदर्शन करुणापूर्ण सन्तों ने कृपा करके देशकाल

पात्रानुसार आज्ञा यह दी कि "मरा मरा रट"। वे वहीं बैठ अमित काल पर्य्यन्त "मरामरामरामरा" रटते जपते रहे (चौ०) "सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥"

सहस्र युग बीतने पर पुनः श्रीसप्तर्षि कृपा करके उधरही से आए, और बल्मीकि (बामी) में से अन्वेषण करके उन्हें ढूंढ निकाला, "बाल्मीकि" नाम रक्खा। व्याध को राम कृपा तथा नाम प्रताप से शुद्ध सिद्ध मुनीन्द्र पाया। सत्सङ्ग की जय॥

"जहां बालमीक भए व्याध तें मुनीन्द्र साधु, 'मरा मरा' जपि, सुनि सिष ऋषि सात की"। (चौ०) उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीक भए ब्रह्म समाना॥ श्रीसीताराम मन्त्रराज का उपदेश करके, श्रीसप्तर्षि चले गए॥ श्रीरामनाम का माहात्म्य कौन किस प्रकार से कहे?

श्री नारद भगवान् तथा जगतपिता श्री ब्रह्मा जी ने कृपा करके महर्षि आदिकवि महाराज को श्रीराम गुण तथा रामचरित से परिचित किया। महर्षि ने शतकोटि रामायण कीर्त्तन किया। "चरितं रघुनाथस्य शत कोटि प्रविस्तरं। एकैकमक्षरं पुंसां महा पातक नाशनम्"॥ कूजन्तं रामरामेति मधुरंमधुराक्षरं। आरुह्य कविताशाखां बन्दे बाल्मीकिकोकिलम्" (कवित्त)

विधिजू सुजस बीज बोये बिश्व बाग बीच, बारिबर दै बढ़ाए मोक्षफल काम हैं। सगुणावतार ब्रह्म यश 'रसराम' थंभ, काण्ड सप्तकाण्ड, सर्ग पत्र अभिराम हैं ॥ त्रेता ऋतुराज, रामअयन रसाल तरु, कविता सुसाखा पै विराजैं वसु जाम हैं। कूजत मधुर मधुराखर श्रीराम राम बन्दौं बालमीकि कवि कोकिल ललाम हैं ॥

(चौ०) राम लषन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमिकहि जाई ॥ देखत बनसर सैल सुहाए। बालमीक आश्रम प्रभु आए ॥ (दो०) सुचि सुन्दर आश्रम निरखि, हरषे राजिव नैन । सुनि रघुबर आगमन मुनि आगे आयउ लैन ॥ (चौ०) मुनि कहँ राम दण्डवत कीन्हा । आसिरबाद विप्रवर दीन्हा ॥ देखि राम छवि नैन जुड़ाने । करि सनमान आस्रमहिं आने ॥ मुनिवर अतिथि प्रान प्रिय पाए । कंदमूलफल मधुर मंगाए ॥ सिय सौमित्रि रामफल खाए । तब मुनि आसन दिये सुहाए ॥ बालमीक मन आनँद भारी । मंगल मूरति नैन निहारी ॥ (सो०) "राम स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर । अबिगत अकथ अपार, 'नेति नेति' नित निगम कह ॥"

"श्री बालमीकीय रामायण" बड़ा प्रमाणिक ग्रन्थ है ।

(१) श्री बालमीकीय (२) श्री भगवद्गीता (३) पराशरीय-श्री विष्णुपुराण (४) मनुस्मृति, और (५) महाभारत, ये पाँचों बड़ेही प्रमाणिक माने जाते हैं ॥ इङ्गरेज़ी, फ़ारसी, आदि में भी इनके अनुवाद हैं ॥

दूसरे श्री बाल्मीकि जी।

टीका। कवित्त।

हुतो बालमीक एक सुपच सुनाम, ताको श्यामलै प्रगट कियो, भारथ में गाइये। पाँडवन मध्य मुख्य धर्मपुत्र राजा, आप कीनो यज्ञ भारी, ऋषि आए, भूमि छाइये॥ ताको अनुभाव शुभ शंख सो प्रभाव कहै, जो पै नहीं बाजै तो अपूरनता आइये। सोई बात भई वहु बाज्यो नाहिँ, शोच पस्यो, पूछैं प्रभु पास "याकी न्यूनता बताइये" ॥७५॥

"सुपच" (श्वपच)=जो श्वान का मांस भी रांधके खा जावे, भंगी॥

वार्त्तिक तिलक।

अब दूसरे बाल्मीकि जी की कथा कहते हैं। एक सुपच गुप्त भगवद्भक्त "बाल्मीकि" नाम के थे। उनको श्रीश्यामसुन्दर जी ने प्रगट किया; सो कथा "महाभारत" ग्रन्थ में गाई हुई है।

पांचो पाण्डवों के मध्यमें ज्येष्ठ धर्म्मपुत्र श्री युधिष्ठिर जी राजा थे। आपने इन्द्रप्रस्थ में एक बड़ा भारी यज्ञ किया। जिस्में सम्पूर्ण ऋषिवर्ग आए, जिनसे समस्त यज्ञभूमि भर गई।

उस यज्ञ के पूर्ण होने का अनुभाव प्रभाव यह था कि एक शंख रक्खा गया, कि जब वह आपसेआप बज-उठे तब यज्ञ को सम्पूर्ण जानें। और यदि शंख स्वतः

न बजे, तो जानिये कि यज्ञ पूर्ण न हुवा; सो वैसाही हुआ अर्थात् शंख नहीं बजा ॥

तब युधिष्ठिरादिक को बड़ाही शोच हुआ; और श्रीकृष्णचन्द्र जी से पूछने लगे कि "किस घटती (न्यूनता) से शंख नहीं बजा? सो कारण आप कृपा करके बता दीजिये" ॥

टीका। कवित्त।

बोले कृष्णदेव, "याको सुनौ सब भेव, ऐपै नीकेमांनि-लेव बातदुरी समुझाइये। भागवत संतरसवंत कोऊ जेंयो नाहिं, ऋषिनसमूह भूमि चहूंदिशि छाइये॥ जौपै-कहौ "भक्तनाहीं" नाहीं कैसे कहौं, गहौंगांस एक और कुलजाति सो बहाइये। दासनि को दास, अभिमान को वास कहूं, पूरण की आस, तौपै ऐसो लैजिंवाइये ॥७६॥

"दुरी"=छुपी, गुप्त। "गाँस"=गुप्त सूक्ष्मबात। "बास"=गन्ध; तनकछुक।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर दिया कि इसका सब भेद सुनो। परन्तु सुनके उसको भलेप्रकार से मान्ना। क्योंकि मैं तुम्हें गोप्य रहस्य बताए देताहूं। यद्यपि ऋषियों के वृन्द तो आके यज्ञ भूमि में चारों ओर छाए हुए हैं, परंच किसी भक्ति रस रसिक भागवत मेरे प्यारे सन्त ने तुम्हारे इस यज्ञ में भोजन नहीं किया, इसीसे शंख नहीं बजा। यदि यह कहिये कि "क्या ये सब मुनिगण आपके भक्त नहीं हैं?" तो यह कैसे

कहूँ कि "ये मेरे भक्त नहीं हैं" परन्तु एक और ही गांस ग्रहण करने योग्य है; कि ये सब ऋषिमुनि आचार, ब्रह्म ज्ञान, जाति तथा कुल के अभिमान से भरे हुए हैं; पर मेरा भक्त तो जाति और कुल आदिक के अभिमान को भक्तिरूपी निर्मल नदी में बहाके मेरे दासों का भी दास होकर समस्त अभिमानों के लेश से रहित रहता है।

(चौ०) भक्ति बिरति विज्ञान निधाना। बास विहीन गलित अभिमाना॥ रहहिं अपनपौ सदा दुराए। सब बिधि कुशल कुवेष बनाए। तेहिते कहहिं सन्त श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे। प्रभु जानत सब बिनहिं जनाए। कहहु लाभ का लोक रिझाए॥

(दो०) तिनहिं न जानहिं प्रगट सब, ते न जनावहिं काहु। लोकमान्यता अनल सम, कर साधन बन दाहु॥

यदि तुम्हें यज्ञ की पूर्णता की इच्छा हो, तो ऐसे मेरे प्यारे भक्त को भोजन करावो"॥

टीका। कवित्त।

ऐसो हरिदास पुरआसपास दीसै नाहिं, बासबिनु कोऊ लोक लोकनि में पाइये। "तेरेई नगर मांझ निशि दिन भोर सांझ आवै जाय, ऐपै काहू बात न जनाइये" सुनि सब चौंकिपरे, भाव अचरज भरे, हरे मन नैन "अजू! बेगिही बताइये। कहानांव? कहां ठावँ?

जहाँ हम जाय देखैं, लेखैं करि भाग, धाय पाय लप-टाइये ॥७७॥

"बासबिनु"=गृहहीन, विरक्त; बासना विगत, इच्छा रहित ।

वार्तिक तिलक

ऐसे श्रीमुखबचन सुनके श्रीयुधिष्ठिर जी बोले कि 'ऐसे भगवतदास तो हमारे नगर के आसपास कहीं दिखाई नहीं देते; वरंच ऐसे विरक्त सर्ववासनाविगत सन्त कदाचित कहीं किसी लोकलोकान्तर में मिलें तो मिलैं" । तब आपने कहा कि "तुम्हारे ही पुर में तो दिनरात रहते हैं' और नित्यही सांझ सवेरे तुम्हारे हां आते जाते हैं; परन्तु न कोई उनके प्रभाव को जानता है, और न वे किसी को जताते हैं । "

यह सुन्तेही सब चकित होके आश्चर्य्य भाव में मग्न हो गए; सब के मन तथा नेत्र दर्शन के अभिलाष से अकुला उठे; और सब कहने लगे कि अब कृपाकरके शीघ्रही बता दीजिये कि उनका क्या नाम है और वे कहां विराजते हैं, जहाँ हम जाके दर्शन करके अपना धन्यभाग्य मानें और उनके चरणकमल में लपट जायँ ॥ "

टीका । कवित्त ।

जिते मेरे दास कभू चाहैं न प्रकास भयो, करौं जो प्रकास, मानैं महा दुखदाइये । मोको पर्‌यो सोच यज्ञ

पूरन की लोच हिये, लिये वाको नाम; जिनि ग्राम तजि जाइये॥ ऐसौ तुम कहौ, जामें रहौ न्यारे प्यारे! सदा, हमहीं लिवाइ ल्याइ, नीकेकै जिमाइये। जावो 'वालमीक' घर, बड़ो अवलीक साधु; कियो अपराध हम दियो जो बताइये" ॥ ७८ ॥

"जिनि"=मत, नहीं "लोच"=देखने की इच्छा॥ "जिमाइये"= जिंवाइये, भोजन कराइये ॥ "अवलीक"=निर्व्यलीक, सच्चा ॥

वार्त्तिक तिलक।

तब प्रभु ने कहा कि "जितने मेरे सच्चे दास हैं, वे कभी लोकमें प्रकाशित नहीं हुआ चाहते; और यदि मैं उनके गुणों का प्रकाश करूं, तो वे उस प्रकाश को अपनें मनमें बड़ादुखदाईमान्तेहैं। परन्तु अब मुझे बड़ाही सोच पड़ा क्योंकि तुम्हारे यज्ञ को पूर्ण देखने की बड़ी भारी इच्छा है। और यदि मैं तुमसे उनका नाम बताऊं तो कहीं ऐसा न हो कि वे इस ग्राम ही को छोड़के चलेजावें"।

श्रीयुधिष्ठिर जी बोले कि "हे प्यारे! आप इस प्रकार से बतादीजिये कि जिसमें आप तो सदा अलग के अलगही रहिये, पर हमही जाके लिवायलावैं, और भलीभांति से भोजन करावें"। श्रीकृष्णभगवान् ने आज्ञा दी कि "वाल्मीकि के घर जाओ; वे सच्चे बड़ेही साधु हैं। क्याकहूं! मैंने उनका बड़ा अपराध किया कि तुमसे प्रगट कर बता दिया"॥

टीका। कवित्त।

अर्जुन औ भीमसेन चलेई निमन्त्रन को, अन्तर उघारि कही भक्तिभाव दूर है। पहुँचे भवन जाइ, चहुँ दिशि फिरि, आइ, परे भूमि, झूमि, घर देख्यो छवि पूर है॥ आए नृपराजनि को देखि, तजे काजनि को, लाजनि सों कांपि कांपि भयो मन चूर है। पायनि को धारिये जू, जूठन को डारिये जू, पाप ग्रह टारिये जू, कीजे भाग भूर है॥ ७९॥

"दूर", दुरी, समीपनहीं, छुपी, अप्रगट॥

"पापग्रह"=शनि, राहु, केतु, जो जो प्रतिकूल हों॥

वार्त्तिक तिलक।

प्रभुआज्ञानुसार श्री अर्जुन जी तथा भीमसेन जी उनको नेवता देके लाने के लिये चले; प्रभु ने हृदय खोलके कह दिया कि "जाते तो हो परन्तु मनमें कोई न्यूनता नहीं लाना, क्योंकि भक्ति का भाव बहुत ही अगम होता है।"

वे दोनों इनके घर जापहुँचे; चारो ओर फिरके इनके घर की परिकर्मा कर, सन्मुख आ, प्रेम से झूम झूम, भूमि में पड़ उन दोनों ने दण्डवत किये, और देखा कि इनका भवन, भीतर श्रीभगवन्नाम शंख चक्र चिन्ह श्रीतुलसीवृन्द इत्यादिक भक्तिसामग्रीकी छविसे भरा है। जब इनने देखा कि राजाओं के राजा मुझ दीन

के घर आए, तो भजन के कार्य्यों को छोड़ दिया, और अत्यन्त लज्या से मनमें चूरचूर होके कांपने लगे।

श्रीअर्जुन जी ने प्रार्थना की कि "महात्मा जी! आप कृपाकरके मेरे घर चरण धरिये, भोजन करके अपना जूठन गिराइये और हमारे घरको सम्पूर्ण पापों से रहित तथा शुद्ध करके हमको पापग्रहों से छुड़ाके हम सबको बड़भागी कीजिये॥

टीका। कवित्त।

"जूठनि लै डारौं, सदा द्वार को बुहारौं, नहीं और कों निहारौं, अजू! यही सांचोपन है"। "कहो कहा?" जेंवो कछू पाछे लै जिँवावो हमे जानीगई रीति भक्ति भाव तुमतन है॥ तब तो लजांनौ; हिये कृष्ण पै रिसानौ, नृप चाहौ सोई ठानौ, मेरे संग कोऊ जन है। भोर ही पधारौ अब यही उर धारौ और भूलि न बिचारौ कही भली जो पै मन है॥ ८०॥

वार्त्तिक तिलक।

यह सुन, श्रीवाल्मीक जी अपने प्रभाव को छिपाते और निज जाति की न्यूनता को प्रगट करते हुए बोले कि, "अजी महाराज! मेरी तो यही प्रतिज्ञा है ही कि सदा आपके जूंठे पत्तल आदि बाहर फेंक आया करता हूं, और आपही के द्वार को झाड़ताबहारता हूं; दूसरे किसी की ओर तो मैं देखता तक नहीं"।

श्रीअर्जुन जी ने सादर कहा कि " आप यह क्या कहते हैं ? कृपाकरके चलिये, हमारे हां कुछ भोजन कीजिये और पीछे हम लोगों को खिलाइये; आपको भोजन कराए विन हमलोग खा नहीं सकते, क्योंकि हम आपके स्वरूप तथा प्रभाव को भले प्रकार से जान चुके हैं कि प्रभु की प्रीति रीति भक्ति भाव से आपका तन मन पूर्ण है । "

तब तो श्रीबाल्मीकि जी लजाए और हृदय में श्री-कृष्णचन्द्र पर रिसियाने कि "प्रभो ! मुझे प्रगट करना यह तुम्हारा ही काम है ! तुमने यह क्या किया ? " फिर प्रत्यक्ष में श्री अर्जुन जी से कहा कि "आप राजा हैं, जो चाहिये सो कीजिये; मैं क्या कर सकता हूँ, क्या कोई सहाय करने वाले मनुष्य मेरे साथ हैं ? "

श्रीअर्जुन जी ने कहा कि "इन सब बातों को छोड़के हम पर कृपा कीजिये, और हमारे घर आप कल सबेरेही पधारिये; अब दूसरा कुछ भूलके भी न बिचारिये; केवल हमारी प्रार्थनाही को अङ्गीकार कीजिये " ।

जब महात्मा जी ने उनका यह आग्रह तथा ऐसी श्रद्धा और प्रीति देखी, तो सरलवाणी से बोले कि बहुत अच्छा, जो आपकी यही रुचि है तो वैसा ही करूँगा ॥ "

टीका । कवित्त ।

कही सब रीति, सुनि धर्मपुत्र प्रीति भई, करी लै रसोई, कृष्ण द्रौपदी सिखाई है । "जेतिक प्रकार सब व्यञ्जन सुधारि करो, आजु तेरे हाथनि को होतिसफलाई है" ॥ ल्याए जा लिवाई, कहै "बाहिर जिमाई देवो," कही प्रभु "आपु ल्यावो अंक भरि भाई है" । आनिकै बैठायो पाकशाल में, रसोल ग्रासलैत बाज्यो शंख, हरि दण्डकी लगाई है ॥८१॥

वार्त्तिक तिलक ।

आयके, श्रीअर्जुन जी और भीमसेन जी ने श्री युधिष्ठिर जी से श्री बाल्मीकजी की रीति प्रीति भक्ति का वर्णन किया। सुनके श्रीधर्म पुत्र महाराज को अत्यन्त प्रेम हुआ और मन में कहा कि—

"हरि को भजै सो हरि को होई। जाति पांति पूछै नहिं कोई" ॥ तदनन्तर श्री द्रौपदी जी रसोई करने लगीं; श्री कृष्ण भगवान् ने उनको सिखाया कि "जितने प्रकार के व्यञ्जन तुम जानती हो सो सब अच्छे प्रकार से सुधार के करो; आज तुम्हारे हाथों की सफलता है।"

फिर भोजन के समय युधिष्ठिरादि स्वयं जाके उनको सादर ले आए। श्री बाल्मीक जी ने कहा कि "मुझे बाहरयहीं बैठाके प्रसाद पवादीजिये" परन्तुप्रभु ने श्रीअर्जुन जी से आज्ञा की कि ऐसा नहीं, बरंच मेरी तो यह

रुचि है कि इनको सादर भीतर ले चलके बैठाओ"। ऐसा-ही किया अर्थात् पाकशाला में ही बिठलाके उनके आगे व्यंजनों के थार ला रक्खे॥

श्री बाल्मीकजी ने मनही में श्रीकृष्ण भगवान् को अर्पण किया। (चौ०) प्रभुहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं॥ फिर जोंहीं परम रसाल ग्रास मुख में डाला, उसी क्षण शंख बजा। बजा तो सही, परन्तु भली भाँति से नहीं। तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उस शंख को एक छड़ी लगाई॥

टीका। कवित्त।

"सीत सीत प्रति क्यों न बाज्यो ? कछु लाज्यो कहा ? भक्ति कौ प्रभाव तैं न जानत यों जानिये"। बोल्यो अकुलाय, "जाय पूछिये जू द्रौपदी कौं, मेरो दोष नांहिं, यह आपु मन आनिये"॥ मानि सांच बात "जाति बुद्धि आई देखि याहि, सबही मिलाई मेरी चातुरी बिहानिये"। पूंछेते, कही है बालमीक "मैं मिलायों यातें आदि प्रभु पायो पाउं स्वाद उन मानिये॥ ८२॥

वार्त्तिक तिलक।

और, प्रभु ने पूछा कि "क्यों रे शंख! तू प्रत्येक सीथ पर नीके प्रकार से क्यों नहीं बजता? कुछ लज्जित सा होके क्यों बजा है? मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तू इनकी भक्ति के प्रभाव को नहीं जानता।" तब

वह अभिमन्त्रित दिव्य शंख अकुलाके स्पष्ट बोला कि "इसका कारण आप जाके श्री द्रौपदी जी से पूछिये; इसमें मेरा दोष नहीं है आप इसे अपने मन में निश्चय मानिये" ॥

श्री प्रभु के पूछने पर श्री द्रौपदीजी ने शंख की वार्त्ता को सत्यमानके कहा कि "हां प्रभो! मुझे इन्में जाति बुद्धि आगई क्योंकि इन्होंने पदार्थों को एक में मिला करके मेरी चातुरी की हानि कर डाली। मैं इनसे, शंख से, तथा आप से तीनों से क्षमा माँगता हूं।"

इस पर प्रभुने श्री बालमीक जी से पूछा कि "तुम इन बिविध प्रकार के व्यंजनों को एक में मिलाके क्यों पाते हो?"

आपने उत्तर दिया कि "इन सब पदार्थों को प्रथमतः आपने तो पाया ही है, इससे येसब आपके प्रसाद हुए। अब मैं इन्हें पृथक पृथक पाके प्रत्येक के स्वाद को अनुमान नहीं किया चाहता हूं, स्वाद लेने से प्रसाद का भाव जाता रहेगा" ॥

ऐसा सुन्ते ही, श्रीद्रौपदी युधिष्ठिरादि का अधिक भाव इनमें हुआ; तब शंख की ध्वनि भली भाँति हुई और यज्ञ पूर्ण हुआ। देवते फूलों की बर्षा करने लगे। सब बोले कि श्रीभक्ति महारानी जी की जय!

श्री प्राचीनबर्ही जी।

राजा प्राचीन बर्हि पूर्व मीमांसा के अनुसार यज्ञा-

दिक कर्म विधिवत् किया करते थे। इनके कई सहस्र पुत्र हुए; परन्तु देवर्षि श्रीनारदजी कृपासिन्धु ने दया करके भक्ति योग के अनुपम रहस्य का उपदेश कर, उन सब को विरक्त बना, हरि भजन में तत्पर कर ही तो दिया। कृपा करके राजा से कहा कि "आँखें मूंद के देख तो"। उसने और यज्ञ करानेवालों ने देखा कि बहुत पशु कि जिनको उन्होंने यज्ञ में बलि दिया था कोप करके खड़े हैं और इनसे अपना २ पलटा लेने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। "पर पीड़ा सम नहिँ अधमाई" ॥ "परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा" ॥

वह देख राजा के रोमांच खड़े हो गए और वह समझ गया कि हिंसा वास्तव में महा पाप है। श्रीनारद जी का उपदेश पाकर श्रीराम कृपा से राजा तथा यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण सब भगवद्भक्ति रूपी बोहित के सहारे संसार सागर तर के परम धाम को चले गए॥ (दो०) "उमा! दान, मख, यज्ञ, तप, नानाव्रत, अरु नेम। राम कृपा नहिँ करहिं तस, जस निःकेवल प्रेम॥"

श्रीसत्यव्रत जी।

श्रीभगवत के "मीन" अवतार इन्ही की अंजली में प्रगट हुए थे। राजा सत्यव्रत जी सिन्धुतीर संन्ध्या कर रहे थे सूर्य्य भगवान को अर्घ देने के समय एक विचित्र मत्स्य इनकी अञ्जली में आगिरा। राजा ने कमण्डल में छोड़ दिया। वह बढ़ने लगा और ऐसी

विलक्षण रीति से कि जब क्रमशः घट, हृद, और सर में भी नहीं अँटा तब उसे समुद्र में पहुँचा दिया॥ वहाँ आप दशलाख योजन लंबे हो गये और उसके सातवें दिन प्रलय हुआ। मीन भगवान् की आज्ञा और उपदेश से, एक अलौकिक नौका पर, सप्तर्षि इत्यादि और ओषधियों समेत, राजा चढ़े। मत्स्यभगवान् ने अपने शृङ्ग में उस नौका को वासुकीनाग से बँधवालिया और उस महा जलार्णव में राजा को उनके साथियों सहित बचा लिया। यही, राजा सत्यव्रत की संक्षिप्त कथा है॥

"केशव! धृत मीनशरीर; जय जगदीश हरे!"

(२) एक दूसरे "श्रीसत्यव्रत जी" रघुवंशी "श्री वीरमणि जी" थे जिनके नाम "अन्नदाता" आदि भी थे॥

श्री मिथिलेश जी।

श्री मिथिलेश "निमि" जी महाराज की चर्चा श्री ग्रन्थकार स्वामी जी आगे चलके, नवें छप्पै (तेरहवें मूल) में करेंगे; और श्री मिथिलेश जनक जी महाराज की कथा, पृष्ठ ८९।९० में हो चुकी है॥

राजा श्री नील जी।

राजा श्री नील जी श्री नर्मदा तट माहिष्मती में रहते थे। उनके पुत्र प्रवीर ने श्री अर्जुन जी के यज्ञ के घोड़े को बांध रक्खा; पर लड़ाई में वह हार के अपने पिता नील राजा के पास भाग गया। श्री नील जी ने अपने जामाता पावक देव को स्मरण किया

जिन ने उनके साथ समर में जाकर श्री अर्जुन जी की बहुत सैना जला डाली; श्री अर्जुन जी ने वरुणास्त्र से अग्नि को शान्त कियाचाहा, पर नहोसका। तब श्री कृष्ण भगवान् के उपदेश से वैष्णवास्त्र चलाया, जिस्से पावक देव भाग चले और जाकर उनने नील जी से कहा कि जीतना कदापि सम्भव नहीं; अब यज्ञाश्व को छोड़दो, देदो" ॥

श्री नील जी ने घोड़ा देकर अश्वमेध के अनन्तर, प्रभु के प्रिय सखा श्री अर्जुन जी से विनय कर, उनके तथा प्रद्युम्न जी के द्वारा, श्री हरि भक्ति पाके, श्री वैकुण्ठ में अचल बास पाया ॥

श्रीरहुगण जी।

राजा श्रीरहुगण जी बड़ेप्रतापी तथा बुद्धिमान थे। एक दिन आप, ज्ञान प्राप्ति के लिये श्रीकपिल भगवान् के दर्शन को शिविका (पालकी) पर, जा रहेथे। पंथ में एक कहार की आवश्यकता आपड़ी तो लोग एक हृष्ट पुष्ट मनुष्य को पकड़ लाए और पालकी में ढुरादिया (लगादिया)। आप "श्री जड़भरत जी थे"। आप मार्ग को देख भालके जीव जन्तु बचाके पग धरते और कभी २ कूद भी जाते थे। इस्से पालकी बहुत हिलती तथा राजा को कष्ट होता था।

राजा के रजोगुणी हृदय से तमोगुणमय वार्ता

श्रवण करके जब महात्माने सतोगुणी प्रसंग प्रारंभ किया तब राजा जी समझ गए कि ये कोई महान् पुरुष (परम हंस) हैं । तब शिविका से उतर, पांव पड़, आप से सादर बिनय किया, क्षमा मांगी, और इष्ट वार्तालाप करने लगे ।

आप के उपदेश से राजा कृतार्थ हो अपनी राजधानी को लौट आए ।

श्री "जड़ भरत" जी और राजा रहुगण का सम्बाद श्रीमद्भागवत के पांचवें स्कन्ध में अवश्य देखना सुन्ना चाहिये ॥

श्रीसगर जी ।

राजा सगर को उनकी सौतेली माता ने गर्भ ही में विष देदिया था; परन्तु राम कृपा से बचे । राजा सगर के, एक स्त्री से, असमंजस नाम एक पुत्र, और दूसरी स्त्री से ६०००० (षष्ठिसहस्र) बेटे हुए । असमंजस ने प्रजा के साथ कठिन उपद्रव किया इससे राजा ने उसको देश से निकाल दिया । तब असमंजस जी, अपने योग बल से प्रजा का कल्यान करके, आप बन में रहके हरिभजन करने लगे ।

राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ से इन्द्र घोड़ा चुरा लेजाकर श्रीकपिल देव जी के आश्रम में बांध आए। सगर के साठसहस्र पुत्रों ने घोड़ा ढूंढने में पृथ्वी खोदी कि जिस्से सागर हुआ । वे जब श्रीकपिल देव जी के

पास यज्ञपशु (अश्व) को देख कपिल भगवान् को दुर्वचन कहने लगे, तब आपने आंखें खोलीं। दृष्टि पड़ते ही साठो सहस्र भस्म होगए ॥

असमंजस के पुत्र अंशुमान ने श्री कपिल महाराज की स्तुति की। आपने प्रसन्न हो घोड़ा देदिया; तथा श्री गंगाजी को लाने की आज्ञा दी। घोड़ा लाकर अंशुमान ने अपने दादा (पितामह) राजा सगर को दिया ॥

श्री सगर जी ने, यज्ञ पूर्ण कर, अंशुमान को राज्य दे आप बन को जा भगवत भजन कर परांगति पाई ॥

श्री भगीरथजी।

राजा अंशुमान ने बहुत दिन राज्य कर, अपने पुत्र दिलीप को राज्य दे, तप किया तथा दिलीप राजाने भी श्री गंगाजी ही के लिये तप किया। राजा भगीरथ नेविवाह करने के पूर्वही तप करना आरम्भ किया, उनके तप से राम कृपा से श्री गंगाजी आईं, इसीलिये श्री गंगाजी भागीरथी के नाम से भी पुकारी जाती हैं। श्रीभगीरथ जी की भक्ति को धन्यवाद जिनके द्वारा श्री गंगाजी प्रगट हुई हैं ॥ जय ३ सुरसरि! तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥ जय भगीरथनन्दिनी, मुनिचय चकोर चन्दिनी, नर नाग बिबुध बन्दिनी, जय जन्हु बालिका। बिष्णु पद सरोजजासि, ईश सीस पर बिभासि, त्रिपथगासि,

पुण्यराशि, पाप छालिका॥ बिमल विपुल बहसि वारि, शीतल त्रय ताप हारि, भँवरबर विभंगतर तरंगमालिका। पुरजन पूजोपहार शोभित शशिधवल धार, भंजनि भवभार भक्त कलपथालिका॥ निज तटबासी बिहंग जलथलचर पशु पतंग कीट जटिल तापस, सब सरिस पालिका। "अवधपुरीसरयुतीर सुमिरत रघुबंशबीर बिचरत मति" देहि मोहमहिष कालिका!

श्रीरुक्माङ्गद जी।

(८४२) टीका। कबित्त।

रुक्मांगद बाग शुभ गन्ध फूल पागि रह्यो, करि- अनुराग देवबधू लेन आवहीं। रहि गई एक, कांटा चुभ्यो पग बैंगन को, सुनि, नृप माली पास आए सुख पावहीं॥ कह्यौ "को उपाय स्वर्ग लोक को पठाइ दीजै" "करै 'एकादशी' जलधरै कर जावहीं"। "ब्रत को तो नाम यहि ग्राम कोऊ जानै नाहिँ" "कीनो हो अजान काल्हि, लावो गुन गावहीं" ॥८३॥(६२९-८४६)

वार्त्तिक तिलक।

भगवद्भक्त राजा श्री रुक्माङ्गद जी की पुष्प-वाटिका फूलके सुन्दर सुगन्धित फूलौं से भरी पगी सुशोभित हो रही थी, यहाँतककि स्वर्ग के वाटिकाओं से भी अधिक उत्तम थी, और इस्से स्वर्गस्त्रीयां(अप्-सराएं) भी रात्रि में प्रेम से फूल लेजाया करतीथीं।

एक बार उन्में से एक अप्सरा के पांव में भांटे का कांटा चुभ गया, अतः उसका पुण्य क्षीण होने से उसकी आकाश में उड़ने की दिव्यगति नष्ट होगई अत एव बाटिकाही में रह गई। यह बार्त्ता मालियों से सुनके श्रीरुक्माङ्गद जी ने, स्वयं वहां पहुंचके उस अप्सरा को (राम कृपा से अकाम दृष्टि से ही) देखा, और प्रसन्न होके उससे पूछा कि "तुम्हारे स्वर्ग जाने का कोई उपाय हो तो बताओ कि जिस्से हम तुम को स्वर्ग को भेज दें"।

उस अप्सरा ने उत्तर दिया कि "जिसने 'एकादशी' का व्रत किया हो, वह यदि अपने एक एकादशी के व्रत का फल संकल्प करके जल मेरे हाथ में देदेवे तो मैं स्वर्ग को चली जाऊं" राजा ने उत्तर दिया कि इस व्रत का तो नाम भी कोई इस नगर में नहीं जानता"।

तिस्पर अप्सरा बोली कि "कल एकादशी थी; कदाचित कोई अज्ञातहू से भूखा रह गया हो, तो उसको लाके उसका ही फल मुझ को दिलवा दीजिये, तोमैं स्वर्ग को चली जाऊंगी और आप के इस उपकार को सदा मानती गाती रहूंगी।"

(८४५) टीका। कबित्त।

फेरी नृप डौंड़ी; सुनि, बनिक की लौंड़ी भूखी रही ही कनौड़ी, निशि जागी, उन मारियै। राजा ढिग आनि करिदियो व्रतदान; गई तिया यों उड़ानि निज लोक

को पधारियै॥ महिमा अपार देखि, भूप ने बिचारी याको "कोउ अन्नखाय ताको बांधि मार डारियै"। याही के प्रभाव भाव भक्ति बिसतार भयो, नयो चोंज सुनो सब पुरी लै उधारियै॥ ८४॥ (५२९-५४५)

वार्त्तिक तिलक।

यहसुन, राजा ने अपने नगर में डौंड़ी फिरवादी कि "कल जो कोई दिनरात भूखा रहगया हो सो राजा के समीप चले!!! उसपर महाराज अति प्रसन्न होंगे"। ऐसा ढिँढोरा सुनके एक बनिये की कनौड़ी टहलनी सामने आई, जिस्को किसी अपराध से बनिये ने बहुत पीटा और भोजनभी नहीं दिया था; इसी हेतु से वह भूखी और रातभर रोती जागी हुई थी। राजाने उसी लौंड़ी (टलनी) से संकल्पकराके उसअज्ञात ब्रत का फल अप्सरा को दिलादिया; इतनेही मात्र के प्रभाव से उस अप्सरा को दिव्य गति प्राप्त होगई, तथा उड़के वह निज लोक को चली भी गई॥

इस प्रकार एकादशी ब्रत का आश्चर्य्यजनक अमोघ माहात्म्य देखके, राजा ने अपने पुर और देश भर में आज्ञा देदी कि "एकादशी को यदि कोई अन्न खायगा, तो उस्को बांधके प्राणान्त दंड दिया जायगा"। यों सब लोग राजा की आज्ञा से ब्रत और जागरन तथा भगवन्नाम कीर्त्तन में तत्पर होगए॥

इसीब्रतके प्रभाव से राजा के पुर भर में भावभ-

क्ति का अति प्रचार हुआ; और नवीन अनोखी बात यह हुई कि अन्त में सब के सब मुक्तरूप होकर श्री भगवद्धाम को प्राप्त होगए ॥

राजा रुक्माङ्गद की सुता

(८१६५२) टीका । कवित्त ।

एकादशी व्रत की सचाई लै दिखाई राजा; सुता की निकाई सुनौ नीके चित्त लाइकै । पिताघर आयो पति, भूख ने सतायो अति, मांगै तिया पास, नहीं दियो यह भाइ कै ॥ "आजु 'हरि बासर' सो ता सर न पूजै कोऊ; डर कहा मीच की" यों मानी सुख पाइ कै। तजे उन प्रान, पाए बेगि भगवान, बधू हिये सरसान भई; कह्यो पन गाइ कै ॥ ८५ ॥ (६२९-५४४)

वार्त्तिक तिलक ।

श्री एकादशी व्रत का प्रभाव और सचाई तो राजा ने प्रगट की, अब राजा की लड़की की महिमा वा प्रशंसा लिखते हैं सो भली भाँति से चित दे के सुनिये।

उसका पति रुक्माङ्गद जी के घर (अपने सुसराल) में आया; उसी दिन एकादशी थी । राजपुत्र अति सुकुमार तो थाही उसको क्षुधा ने अत्यन्त बाधा किया; जब उसको किसी ने भोजन न दिया तब उसने अपनी स्त्री से यह कहा कि खाने बिना मेरे प्राण छूट जाएंगे; परन्तु तब भी उसने एकादशी के भावसे भोजन नहीं दिया, और बोली कि "आज हरिबासर है कि जिस्की

समानता को कोई और व्रत नहीं पहुँच सकता। आज के मृत्यु का क्या भय है? कि जिसमें अभय परमपद की प्राप्ति है"। सुखपूर्वक ऐसी दृढ़ता को वह गहे रही॥

उसने भूख से प्राण छोड़ही तो दिये। उसी समय वैकुण्ठ से विमान आया और सबके देखते दिव्यरूप हो वह उसपर चढ़ भगवद्धाम को चला गया॥

यह देखके उनकी स्त्री का हृदय भक्ति से अत्यन्त सरस हुआ। प्रभुने प्रसन्न हो पारषदों को विमान समेत भेजकर आपको (उनकी प्रिया) को भी कृपा करके अपने धाम में बुला लिया॥

इस भांति उनके एकादशी व्रत का पन हमने गान किया॥

——:०:——

टीका (समुदाय)।

(८१७/४२) कवित्त।

सुनी "हरिचंद" कथा, व्यथा बिन द्रव्य दियो, तथा नहीं राखी बेचि सुत तिया तन है।"सुरथ""सुधन्वा" जू सों दोष के करत मरे, "शंख" औ "लिखित" बिप्र भयो मैलो मन है॥ इन्द्र औ अगिन गये शिवि पै परीक्षा लेन, काटि दियो मांस रीझि सांचो जान्यो पन है। "भरत" "दधीच", आदि भागवत बीच गाए, सबनि सुहाए जिन दियो तन धन है॥ ८६॥ (६२९-५४३)

वार्त्तिक तिलक ।

महाराज श्रीहरिश्चन्द्र जी की कथा सुनिये । दुःखरहित मनसे (श्रीबिश्वामित्र जी को) सम्पूर्ण द्रव्य दिया, तथा पुत्र अपनी रानी और अपना शरीर तक भी नहीं रक्खा तीनों को बेच डाला ॥

श्रीसुरथ जी तथा श्री सुधन्वा जी इन भक्त राज पुत्रों से शंख और लिखित मलीन मनवाले ब्राह्मण, द्वेष एवं भक्तद्रोह करते ही मर गए ॥

इन्द्र, सेन पक्षी का रूप धरके एवं अग्नि कपोत का रूप वनाके राजा शिवि जी की परीक्षा लेने के निमित्त गए । उनके धर्म की सचाई पर रीझके प्रगट होके इन्द्र और अग्नि ने बरदान दिया ॥

श्रीभरत जी श्रीदधीचि जी आदिक भक्तों की कथा श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में गान की हुई हैं ।

इन सब ने अपने तन और धन परमार्थ में देदिये इससे ये धर्म और भगवद्भक्ति की शोभा को प्राप्त हुए ॥

☞ इन सब की कथा नीचे लिखी जाती हैं देखिये ॥

:o:

श्रीहरिश्चन्द्र जी ।

राजा श्रीहरिश्चन्द्र जी सूर्य्यवंशी श्री अयोध्या जी के राजा धर्म कर्म निष्ठा में बड़े पक्के तथा प्रतापी थे । एक समय इनके कुलपूज्य पुरोहित श्री बशिष्ट जी महाराज कहीं गए थे इसी से श्रीबिश्वामित्र जी से इनने यज्ञ कराया जिनने दक्षिणा में राज्यादि तथा

तीनभार (इक्कीस मन) सोना भी संकल्प करालिया; और उक्त तीनभार सुवर्ण राजा से बड़ी कड़ाई सेमांगा।

श्रीवशिष्ठ जी आकर राजासे बोले कि "श्रीकाशी जी श्रीविश्वनाथपुरी है किसी प्राकृत राज्य के मध्य नहीं गिनाजाता सोतुम वहीं कुमार रोहिताश्व तथा रानी समेत अपने आप को बेचकर दक्षिणा का सोना मुनि को देदेसकतेहो, उसमें बिश्वामित्र जी कोई बखेड़ा नहीं लगा सकते"। तब, श्रीकाशी जी में जाकर राजा के पुत्र और धर्मपत्नी एक ब्राह्मण के हाथ बिके और स्वयं राजा एक चाण्डाल के यहां बिका॥ यों पूर्ण दक्षिणा देडाली।

कालियाचाण्डाल ने इनको मृतक का कर लेनेको स्मसानघाट पर रखदिया॥

श्री कौशिक (बिश्वामित्र) जी ने सांप होकररोहिताश्व को काटा, कुमार मरगया; रानी पुत्रके मृतशरीर को ले रोती पीटती हुई घाटपर गई। उस्से भी धर्म्मात्मा दुःखी राजा ने चाण्डाल(डोम) के लिये कर मांगाही। और कुछ तो थाही नहीं इस लिये इनने रानी के वस्त्र में से ही आधा फड़वा के लिया, अपना धर्म न छोड़ा। इन्द्र तथा विश्वामित्र जी ने जब राजा को यों दृढ़ पाया, तो वे पुनः दूसरी चाल चले अर्थात् काशी नरेश के पुत्र को मार कर, और हरिश्चन्द्र जीकी निर्दोष रानी को डाकिनी बताकर राज पुत्रके मृत्यु का

कलंक उसपर लगाया, यहां तक कि काशी नरेश ने राजा हरिश्चन्द्र ही को उस रानी के मारडालने की आज्ञा दी । 'इस अन्तिम परीक्षा में भी हरि कृपा से उत्तीर्ण धर्म्मात्मा श्री हरिश्चन्द्र जी' ने जोंही रानी के बध के अर्थ शस्त्र उठाया, वहीं श्रीसूर्य्य भगवान् ने, निज कुलभूषण पर प्रसन्न हो, आकाश वाणी की कि "धर्म्मात्मा हरिश्चन्द्र की जय;" एवं इन्द्रादिने पुष्पवृष्टि भी की; विष्णु बिधाता महेश्वर ने साक्षात प्रगट होकर दर्शन दे राजा का हाथ रोक लिया; राजकुमार को भी जिला दिया; बिष्णुभगवान ने भक्ति वरदान दिया; विश्वामित्र ने भी नरेश को अपनी सब करतूत कहके प्रशंसायुत श्री अयोध्या जी के राज्य करने की आज्ञा दी ।

श्रीसीतारामकृपासे राजाने भक्ति प्रचार और राज्य कर अपने उसी पुत्र को राज दिया; परम धाम को सिधार, जग में अपना और धर्म का यश फैलाया ॥

श्रीसुरथ; श्रीसुधन्वा जी ।

ये दोनों परम भागवत तथा सगे भाई थे; किसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि ये दोनों चम्पक पुरी के राजा "हंसध्वज" के पुत्र थे; औरों ने राजा नीलध्वज जी के पुत्र इन्हें लिखा है; अस्तु ।

इनके पिताने एक समय अर्जुन जी से युद्ध करने के हेतु यह आज्ञादी कि "सब सेना तुलसी माला तथा ऊर्द्धपुण्ड तिलक धारण करके रण भूमि में आवे और जो कदराई करेगा सो तप्ततेल के कड़ाह में छोड़ा जावेगा"।

परमभक्त राजकुमार श्रीसुधन्वा जी चलते समय श्रीमातुचरण कमल को दण्डवत करके निजधर्मपत्नी से विदा होने गये। स्त्री ने कर जोड़के प्रार्थना की कि "प्राण नाथ! मैं ने स्त्रीधर्म से छुही पा आज ही स्नान किया है, तुमसे विशेष प्रेमालिङ्गन चाहती हूं; मेरे परितोष अनन्तर स्नान करके, तिलक माला शस्त्रादि सजके, तब हरिस्मरण करते हुए सानन्द समरभूमि में जाव"। श्रीसुधन्वा जी ने, जो "एक स्त्री व्रत धारी" थे, ऐसाही किया। इसीलिये वह धर्म कर्म निष्ठा में प्रसिद्ध हुए।

रणमें विलम्ब के साथ पहुँचने से निज आज्ञा भंग समझ राजा (इनका पिता) बड़ा अप्रसन्न हुआ और "शंख" तथा "लिखित" नाम के मनमलीन दो ब्राह्मण मन्त्रियों ने, द्वेषसे, राजा के उस क्रोध को और भड़कादिया। निदान निर्दोष राजकुमार श्रीसुधन्वा जी खौलते तेल के कड़ाह में डाल दिये गए। परन्तु वह तो परम भागवत थे, भक्तरक्षक हरि की कृपा से तप्त तेल उनको श्रीसरयू जल (शीतल सुखद) होगया जैसे श्रीप्रह्लाद जीको।

(दो०) पिता विवेक निधान बर, मातु दयायुत नेह। तासु सुश्रन किमि पाइहै श्रनत श्रटन तजि गेह ॥

शंख श्रौर लिखित ने तेल के ताप की परीक्षा के लिये कड़ाह में एक सजल नारियलफल छुड़वाया जो पड़ते ही फूटा; श्रौर दो टुकड़े होकर हरि इच्छा से शंख तथा लिखित की खोपड़ियों पर ऐसे जालगे कि उनदोनों भक्तद्रोहियों के प्राण ही लेलिये।

(चौ०) कर्म प्रधान बिश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥ जो श्रपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥ भक्त द्रोह करि कोउ न बांचा। भक्तसुरक्षक हरि पन सांचा॥

दोनों भाइयों श्रीसुरथ तथा सुधन्वा जीने श्रीश्रर्जुन जी से (जिनके सारथी स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् थे,) भली भांति लड़के रणक्षेत्र में शरीर त्यागा। उनके सीसों को श्रीशिव जी ने श्रपने माला में रखलिया।

(छप्पै) भस्म श्रंग, मर्दन श्रनंग संतत श्रसङ्ग, हर। सीस गंग, गिरा श्रर्द्धंग, भूखन भुजंग वर॥ गल मुण्डमाल, बिधुबाल भाल, डमरू कपाल कर। बिबुध वृन्द नवकुमुद चन्द सुखकन्द शूलधर॥ त्रिपुरारि त्रिलोचन दिगवसन विषभोजन भवभय हरन। कह तुलसिदास सेवत सुलभ, शिव शिव शिव शंकरशरन॥

यों भगवत के सन्मुख तन तजके, परम भागवत दोनों भाई श्रीभगवत के धाम को गए।

श्रीभक्ति महारानी जी की जय ॥

राजा श्रीशिवि जी।

दानशील धर्मधुरन्धर महाराज श्री"शिवि" जी दयासिन्धु "धर्म कर्म निष्ठा"में प्रसिद्ध हैं, यहां तक कि इसमें देवतों के राजा इन्द्र जी ने इनकी परीक्षा लेनी चाही इन्द्र ने आप तो सेन (बाज़) पक्षी का रूप धारण किया और अग्नि देव कपोत बने। सेन कपोत पर झपटा, तब कपोत भागकर श्रीशिवि जी के गोदमें जा छुपा और बोला कि "महाराज! मैं आप के शरण हूं मुझे सेन के चंगुल से अभय देकर रक्षाकीजिये"; साथही सेन भी पहुंचा और कहाकि "यह पक्षी मेरा भक्ष्य है, मैं भूखा हूं; आप मेरे अहार में बाधा न डालिये इसको मुझे दीजिये"। राजा ने कहा "मैं नदूंगा"।

धर्म्माधर्म पर वाद विवाद के अनन्तर दोनों में प्रसन्नता पूर्वक यह बात ठहरी कि महाराज कपोत के तुल्य मांस अपने शरीर से सेन को दें। राजा कपोत को तुला के एक पल्ले पर बैठाके, दूसरे पल्ले पर अपने शरीर का मांस काट २ तुलवाने लगे। परन्तु समस्त शरीर का मांस भी उस कपोत के तुल्य न हुआ, कबूतर भारी होताही गया! अन्त को राजा जी ज्योंही अपना सीस देने पर उद्यत हुए, वहीं उसी क्षण अति प्रसन्न हो, सेन और कपोत का रूप छोड़ छोड़, प्रगट

होके, श्रीसुरेश इन्द्र जी तथा पावक देव ने दरशन दे, राजा को सीस काटने से रोका, और उनका तन जैसा था पुनः वैसाही हृष्ट पुष्ट कर दिया; फिर उनकी शरणागतवत्सलता दानशीलता दया दृढ़ता आदिक धर्म्मों की प्रशंसा कर, वे यह बरदान दे, चले गए, कि (दो०)
"जीवत भोगो अति विभव, तनु तजि हरिपुर जाइ।
पान करी हरिभक्ति रस' पुनरागमन बिहाइ" ॥

श्रीभरत जी।

श्रीभरत जी के पिता का नाम श्रीऋषभ देव जी था, आप जो नौ जोगीश्वरों के बड़े भाई थे, बहुत दिन राज करने के अनन्तर अपने बड़े लड़के को राज देकर बहुत काल पर्य्यन्त मुक्तिनाथ क्षेत्र में गंडकी जी के तीर तप करते रहे।

एक दिन नदी तट बैठे थे; उसी समय एक गर्भवती हरिणी जलपीने आई; सो सिंहका गर्जना अकस्मात सुनके ऐसी घबड़ाहट में कूदी कि उसका गर्भपात होगया, और वह मरगई; उस्का बच्चा श्रीभरत जी के सामने नदी में बहचला; यह देख दयावश इनने उसको शीघ्र निकाला, तथा असहाय जान, कृपाकर, ये उसको, निज आश्रम में ला पालने लगे।

उस्में इनका मन इतना लगा, उस्को इतना चाहने लगे कि उस मृगसावक की प्रीति में ये बहुतही आ-

सक्त होगए; यहां तक कि जब वह सयाना हो, मृगाओं के झुण्ड में मिल किसी ओर चला गया,तो उसके लिये ये अत्यन्त बिकल हुए। यह आख्यायिका श्रीमद्भागवत में पढ़ने सुनने योग्य है। हरे! हरे! मोह, माया, आशक्ति, इनकी बातें बिलक्षण और अपार हैं ॥

जब इनका शरीर छूटा तो उसराग (स्नेह) तथा मन गति के कारन इनको पुनर्जन्म लेकर मृगाही होना पड़ा॥

जो भरत एक समय सारे भारत खंड के महाराज थे अब वह मृगा होकर कलिंजर के बन में रहने लगे; परन्तु पूर्व भजन और प्रभु की कृपा से हरिण तन में भी आप को पूर्व जन्म की सुधि तथा शुद्ध बुद्धि बनी की बनीही रही; इसी लिये आप अकेले ही रहा करते थे। कारण रहित कृपालु प्रभु ने उस मृग शरीर से छुड़ा कर आपको ब्राह्मण के घर में जन्म दिया। यहां भी 'भरत' नाम पड़ा। श्रीहरिकृपासे ज्ञान तथा दोनों जन्मों की सुधि इनको बनी रही।

(चौ०) "निशिदिन लगे रहत हरिध्याना। का जामत का होत जहाना॥ जिनकी हृदय ग्रन्थि सब छूटीं। सब इन्द्रिय हरि पद महँ जूटीं॥"

आपकी मति बचपन से ही बिरक्त और श्रीहरिभक्ति में अनुरक्त हुई। पूर्व घटना स्मरण कर आप किसी से मिलते न कोई संसारी काम यथार्थ कर देते किसी से बोलते भी न थे बरन किसी के प्रश्न का उत्तर तक नहीं देते थे।

(दो०) धन्य रहनि "जड़ भरत" की, धन्य तासु वैराग्य ॥
जग से जड़ बनि राम पद, पगे धन्यतर भाग्य ॥१॥

एक दिन भिल्लों का राजा इनको पकड़वा, अपनी इष्टदेवी काली के सामने लेजाकर खड्ग ले इन्हें बल देने को उद्यत हुआ। श्रीदुर्गा जी महारानी ने वही खड्ग छीनके उन सब दुष्टों को बध किया और श्रीभगवद् भक्त आप को जानकर आपसे अपना अपराध क्षमा कराया। भक्त भय हारिणी श्रीभगवती महा माया की जय

(चौ०) श्रीसियराम कृपा जाहीपर।
सुर नर मुनि प्रसन्न ताहीपर ॥

राजा रहूगण (पृष्ट २३० । २३१) की कथा में लिख आए हैं कि एकबेर उसने आप को पालकी में लगाया, आप चींटियां बचा कर पग धरते थे जिस्से पालकी उचकी तो आपसे उसने कड़ाई के साथ बात की; आपने ऐसे उत्तर दिये कि शीघ्र वह श्रीचरणों पर गिरा, तथा आपके सत्सङ्ग से ज्ञान विराग प्राप्त किया; सो यह सम्बाद श्रीभागवत में पढ़ने सुन्ने ही योग्य है। अस्तु ॥

समय पा, योगाभ्यास से तनुत्याग, श्रीजड़भरत जी परम धाम को गए ॥

श्रीदधीचि जी ।

परमोदार दधीचि ऋषि का सुयश प्रसिद्ध ही है। वृत्रासुर के उत्पात से अकुलाके देवते भगवत के शरण

में गए, तब प्रभुने आज्ञादी कि "ऋषीश्वर दधीचि महाराज की हड्डी का वज्र बनाओ तो इस उपाय से असुर का नाश होगा; मुनि महादानी धर्म्मात्मा हैं, अस्थि मांगने पर 'नहीं' नहीं कहेंगे"। ऐसाही किया। राजाने अपनी पीठ की अस्थि देडाली उसी का वज्र इन्द्र ने बनवाकर उसी से वृत्रासुर का बध किया॥

(चौ०) "ते नर बर थोड़े जग माहीं। मंगन लहहिं न जिनके नाहीं॥ शिवि दधीचि हरिचन्द कहानी। सुनी न चितदे ते नहिं दानी॥"

---:o:---

श्रीविन्ध्यावली जी।

(८८/८४२) टीका। कवित्त।

बिन्ध्यावली तिया सी न देखी कहूं तियो नैन, बांध्यो प्रभु पिया, देखि किया मन चौगुनौ। "करि अभिमान, दान देन बैठ्यो तुमहीं को, कियो अपमान मैं तो मान्यें सुख सौगुनौ"॥ त्रिभुवन छीनि लिये, दिये बैरी देवतान प्रान मात्र रहे, हरि आन्यें नहीं औगुनौ। ऐसी भक्ति होइ जो पै जागो रहो सोइ, अहो! रहो! भव मांझ ऐपै लागै नहीं भौ गुनौ॥८७॥ (६२९-५४२)।

वार्त्तिक तिलक।

जैसी राजा बलि (पृष्ठ ९१) की स्त्री श्रीबिन्ध्यावली जो थीं, वैसी स्त्री तो कहीं देखने सुन्ने में नहीं आती; कि श्रीवामन भगवान ने इनके प्रियपति को बाँध

डाला और इनने उनको बँधेहुए अपने नेत्रों से देखा तिसपर भी इनका मन मलीन न हुआ, बरंच प्रभु की कृपा समझ चित में चौगुना हर्ष बढ़ाया ।

प्रभु से ये प्रार्थना करने लगीं कि "प्रभो ! आपने बहुत अच्छा किया; ये अभिमान करके, त्रिभुवन के नाथ स्वयं आप को दान देने बैठे, आपकी ही तो पृथ्वी, तिसको अपनी समझ के, अपनेको दानी मान, इनने जो आप को भिक्षुक माना, सो यही बड़ा अपमान किया । आपने इनका अभिमान छुड़ाया, इस्से मैं ने शतगुण सुख माना ॥"

देखिये ! त्रिभुवन को इन से छीनि के इनके शत्रु देवतों को देडाला और केवल प्राण मात्र इनके रह-गए, तब भी श्री बिन्ध्यावली जी ने प्रभु में अवगुण नहीं आरोपणकिया बरंच गुण ही समझा ।

अहा ! जो कदाचित ऐसी प्रबल भक्ति जिसके हो, सो जन चाहे भजन करता हुआ जागता रहे, चाहे प्रभु पर विश्वास कर निश्चिन्त सोता हुआ संसार ही में रहे, तथापि उसको संसार के कोई गुण स्पर्श नहीं कर सकते । वह भक्त जीवन मुक्त ही है ॥

अति सुमति रानी श्री बिन्ध्यावली की प्रेमाभक्ति निष्ठा की प्रसंसा कौन कर सकता है ?

श्रीमयूरध्वज जी; श्री ताम्रध्वज जी।

(९९/८४२) टीका। कवित्त।

अर्जुन के गर्व भयो, कृष्ण प्रभु जानि लयो, दयो रस भारी, याहि रोग ज्यौं मिटाइयै। "मेरो एक भक्त आहि, तोको लै दिखाऊं ताहि, भए बिप्र वृद्ध, संग बाल, चलि जाइयै॥ पहुंचत भाष्यो जाइ "मोरध्वज राजा कहाँ? वेगि सुधि देवो" काहू बात जा जनाइयै। "सेवा" प्रभु करौं, नेकु रहौ, पांउ धरौं, जाइ कही तुम बैठो; कही, आग सी लगाइयै" ॥ ८८ ॥ (६२९-५४१)

वार्त्तिक तिलक।

एक समय श्रीअर्जुन जी को अपनी भक्ति का अभिमान हुआ। इस बात को भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने जानकर मनमें बिचार किया कि "इनको हमने अपना भारी सख्य रस दिया तिस्का अभिमान इनको रोग सरीखा होगया, सो उसको यत्न रूपी औषधि से मिटा डालूं"

ऐसा बिचारकर अर्जुन जी से बोले कि "हे सखे! मेरा एक भक्त है चलो मैं उसको तुम्हें दिखा लाऊं। तुम ब्राह्मण का बालक बन जावो और मैं वृद्ध ब्राह्मण होके दोनों चलें"। ऐसाही किया।

राजा मोरध्वज के द्वार पर पहुंच के प्रतिहार से कहा कि "राजा कहाँ हैं? शीघ्र जाके जनावो कि दो बिप्र आए हैं" किसी ने जाके राजा से जनाया। मो-

रध्वज जी ने उत्तर दिया कि "प्रभु की पूजा कर रहा हूं; जाके कहो कि थोड़ा ठहरिये कृपाकर बैठ जाइये, अभी मैं आके आपके चरणों पर पड़ता हूं"

आकर प्रतिहार ने ऐसाही कहा; सो सुन्तेही, ब्राह्मण देवता के आग सी लग गई ॥

($\frac{१००}{८४२}$) टीका । कवित्त ।

चले अनखाय पायँ गहि अटकाय जाय नृप को सुनाय ततकाल दौरे आए हैं। "बड़ी कृपा करी आज फरी चाह बेलि मेरी, निपट नबेल फल पायँ याते पाये हैं ॥ दीजै आज्ञा मोहि सोई कीजै, सुख लीजै यही, पीजै बाणी रस, मेरे नैन लै सिराए हैं । सुनि क्रोध गयो, मोद भयो, सो परिक्षा हिये लिये चित चाव ऐसे वचन सुनाए हैं ॥ ८१॥ (६२९–५४०)

किसी प्रति में पायँ नहीं है, 'पायो' पाठ है ।

"अनखाय"=रिसाय; अनखसे । "सिराये"=ठंढे, शीतल, जुड़ाने, तृप्त ॥

वार्त्तिक तिलक ।

ब्राह्मण देवता रिसायके चल दिये। तब राजा के सेवकों ने उनके चरणों को पकड़ के बहुत बिनय कर उन्हें रोक रक्खा, और सब वृत्तान्त महाराज से जा सुनाया।

सुन्तेही उसी क्षण राजा दौड़े आए और प्रणाम करके हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगे कि "प्रभो! आपने बड़ी कृपा की; आज मेरी चाह रूपी बेलि फल युक्त हुई जिस्से अत्यन्त नवीन फल रूपी आपके पायँ (चरण)

मैं ने पाए । अब जिस हेतु आपने कृपाकी हो सो मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं वही करके सुख लूटूं और आपके अमृत रस मय बचन श्रवण पुट से पान करूं; आपके दर्शनों से मेरी आंखें भली भांति शीतल हुईं ।"

भक्त राज जीके ऐसे बचन सुन विप्र देव ने क्रोध को त्याग कर आनन्द पाया; फिर परीक्षा लेने का विचार जो आपके हृदय में है तिस्से चित में प्रसन्न होके राजा से यों बोले ॥

(१०१/८४२) टीका । कवित्त ।

"देवे की प्रतिज्ञा करो", "करी जू प्रतिज्ञा हम, जाहि भांति सुख तुम्हैं, सोई मोको भाई है" ।"मिल्यो मग सिंह यहि बालक को खाए जात, कही खावो मोहि नहीं यही सुखदाई है" । "काहू भांति छोड़ो" ? "नृप आधो जो शरीर आवै, तौही याहि तजौं", कहि बात मो जनाई है। बोलि उठी तिया "अरधंगी मोहि जाइ देवो", पुत्र कहै "मोको लेवो", "और सुधि आई है" ॥ ९० ॥ (६२९–५३१)

"भाई"=सुहाई, नीक वा भली लगी, सुखदाई हुई ।

वार्त्तिक तिलक ।

ब्राह्मण—हे राजा! तुम देने की प्रतिज्ञा करो तो मैं कहूं ।

राजा—मैं ने प्रतिज्ञा की; जिस प्रकार से आपको सुख हो, सोई मुझे परम प्रिय है; मैं वही करूंगा ।

ब्राह्मण—हमको मार्ग में एक अद्भुत सिंह मिला, सो इस बालक को खाए जाता था। मैं ने उससे कहा कि "हे सिंह! तुम इस्को तो छोड़ दो और मुझे खा लो"। परन्तु सिंह बोला कि "मुझको इसी के मांस खाने से सुख होगा"। तब मैं ने पूछा कि "भला किसी प्रकार से तुम इस बालक को छोड़ सकते हो?" उसने उत्तर दिया कि "हां, यदि राजा मयूरध्वज का आधा शरीर पाऊं, तब ही तो इसको न खाऊंगा" इस भांति वार्त्ता उसने कही है।

श्रीमयूरध्वज जी कीरानी—(बिप्र से) मैं राजा की अर्द्धाङ्ग ही हूं, मुझे ही लेचलिये, उस्को दे दीजिये, खा जावे।

श्रीमयूरध्वजजीका पुत्र ताम्रध्वज—मैं राजा का आत्मज अतः दूसरा शरीर ही हूं, मुझेही उस सिंह को दे दीजिये कि खाले क्योंकि उस्को बालक का मांस बहुत प्रिय है।

ब्राह्मण—हां, उस्की कही हुई एक बात मैं भूल गया था सो अब सुधि आई है, सुनो।

(१०२/८४१) टीका। कबित्त।

सुनो एक बात "सुत तिया लै करौंत गात चीरैं धीरैं भीरैं नाहिँ," पीछे उन भाषिये। कीन्ह्यो वाही भांति, अहो नासा लगि आयी जब, ढर्‍यो दृग नीर, भीर वाकर न चाखिये॥ चले अनखाय गहि पायँ सो सुनाये

बैन "नैन जल बायौं, अंग काम किहिं नाखिये"। सुनि मरि आयो हियो, निज तनु श्याम कियो, दियो सुख रूप, व्यथा गई, अभिलाषिये॥ ९१॥ (६२९-५३८)

"करौंत"=आरा, अरकस। "भीरें"=डरें, कादर हों। "नाखिबो"= पटकना। "बाकरि"=उसकरके, तिस्से।

वार्त्तिक तिलक।

उससिंह ने पीछे से एह एक बात कही सो भी सुनो कि "आधा अंग योंही न लाना, बरन् इस भांति से चीर के दाहिना अंग लाना कि आरा का एक छोर राजाका पुत्र, तथा दूसरा छोर उनकी रानी पकड़े और दोनों धीरे धीरे चीरें, पर तीनों मन को दृढ़ रक्खें कोई कद राय नहीं"॥

श्रीराम कृपासे तीनों ने ऐसाही किया।
अहहा! ये भगवत् कृपा पात्र धन्य हैं।

जब चीरते चीरते आरा नासिका पर्य्यन्त आया, तब राजा की बाईं आंख से आंसू निकलने लगा। यह देख ब्राह्मण देव बोल उठे कि "राजा! तुम कदरा गए, रोनेलगे, तिस्से वह तुम्हारा मांस नहीं खाएगा और इतना कह रिसियाके चलभीदिये।

ब्रह्मण्यशिरोमणि राजा ने बिप्र देव के चरण पकड़के प्रार्थना की कि "हे द्विजदेव जी! देखिये मेरे दाहिने नेत्र में अश्रु बिन्दु का लेशभी नहीं है कि जो ब्राह्मण के अर्थ लगा;। हां बाईं आंख से आंसू इस का-

रण से चलताहै कि बाम अंग आप के कार्य्य में न आया, व्यर्थ ही फेंक दिया जायगा ।"

यह भाव युक्त बचन सुन्तेही अपार करुणा से आप का हृदय भर आया, और अपने सुन्दर श्याम शरीर को प्रगट करके सपरिवार भक्तराज को दर्शन दिये तथा सिर पर कर स्पर्श कर घाव और व्यथा दोनो का नाश करके अभूत सुख दिया। राजा अति अभिलाष पूर्वक दर्शनानन्द में मग्न हो गए ।

श्रीकृष्ण भगवान को यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि राजा कुछ बर दान मांगे ।

(१०३/८४२) टीका । कबित्त ।

"मो पै तो दियो न जाइ निपट रिझाइ लियो, तऊ रीझि दिये बिना मेरे हिये साल है। मांगौ बर कोटि, चोट बदलो न चूकत है, सूकत है मुख, सुधि आए वही हाल है ।" बोल्यो भक्तराज "तुम बड़े महाराज, कोऊ थोरोऊ करत काज, मानो कृत जाल है । एक मोको दीजै दान", "दीयो जू बखानो बेगि", "साधु पै परीक्षा जन करो कलिकाल है" ॥९२॥ (६२९-५३७)

"तऊ"=तथापि तिसपरभी । "सूकत"=सूखता है। "जाल"=समूह ।

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीप्रभु ने भक्तराज से कहा कि "जैसा तुमने अपना शरीर चीर के दिया वैसा मुझसे तो नहीं दिया-जाता, और अब जो इसका पलटा मैं तुमको दिया चा-

हता हूं तौभी इसके योग्य की तो कोई वस्तु है ही नहीं; इससे सो भी मुझसे नहीं दिया जाता, क्योंकि तुमने मुझको अत्यन्त ही रिझा लिया।

तथापि कुछ रीझ (पारितोषिक) दिये बिना मेरे हिये का साल मिटता नहीं; अतः यदि करोड़ों बरदान मांगो तौ भी जो चोट मैंने तुम्हें दी है उसका पलटा चुक नहीं सकता; इसलिये कुछ अवश्य मांगो। हे प्रिय भक्त तुम्हारी उस दशा की सुधि आने से मेरा मुख सूख जाता है, और क्या कहूं।"

श्रीभक्त राज जी प्रेम से बिह्वल हो हाथ जोड़ के बोले कि "नाथ! आप बड़े महाराज हैं जो कोई थोड़ा भी भला कार्य्य करे उसको आप अपनी कृतज्ञता से सुकृतों का पुंज मान लेते हैं (चौ०) जेहि समान अतिशय नहिँ कोई। ताकर शील कस न अस होई॥

(श्लोक) * कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
नस्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥ १॥

बहुत अच्छा, आप एक बरदान मुझे दीजिये" प्रभु ने कहा कि "दिया, शीघ्र कहो क्या मांगते हो? तब परोपकारी श्रीमयूरध्वध जी ने यह बर मांग लिया

---

* यदि किसी प्रकार से कोई किंचित भी उपकार करे, तो उसीसे प्रभु अतिशय संतुष्ट हो जाते हैं। फिर जो सैकड़ों अपकार भी करे, तो उस जन में अपनपौ मान के उसके दोषों का स्मरण ही नहीं करते; ऐसा प्रभुका स्वभाव है (श्रीबाल्मीकिः)

कि "कलिकाल में भक्त सन्तों की परीक्षा मत लिया-कीजियेगा।"

श्रीअलर्क जी ।

(१०४/८४२) टीका । कवित्त ।

अलरक की कीरति में रांचों नित, सांचो हिये, किये उपदेशहू न छूटै बिष बासना । माता मन्दालसा की बड़ी यह प्रतिज्ञा सुनौ "आवै जो उदर मांझ, फिरी गर्भ आस ना" ॥ पति को निहोरो ताते रह्यो छोटो कोरो; ताको लैगए निकासि; मिलि काशी नृप शासना। मुद्रिका उघारि, औ निहारि दत्तात्रेय जू को, भए भवपार करी प्रभु की उपासना ॥९३॥ (६२९-५३६)

"निहोरो"=प्रार्थना, विनय; "कोरो"=गोद का लड़का, कोछे का बालक । रांचौं=रँग जाता हूं ।

वार्त्तिक तिलक ।

श्री अलर्क जीकी माता श्रीमन्दालसा जीकी कथा पीछे (पृष्ठ २०४ से २०७ तक में) लिख आए हैं ।

श्री अलर्क जीकी कीर्त्ति में मैं सच्चे हृदय से नित्य ही रँगता हूं । लोगों की विषय भोग वासना, उपदेश किये से भी नहीं छूटती परन्तु श्री रामकृपा से अलर्क जीकी सर्वथा छूट गई ।

सुनिये, श्री अलर्कजीकी माता श्री मन्दालसा जी की यह बड़ी भारी दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि "जो जीव मेरे

गर्भ में आवे, उस्को फिर गर्भ में नहीं जाना पड़े अर्थात आसा तृष्णा आदि से छूटके वह मोक्ष पद को प्राप्त हो जावे"। "वद्धोहि को ? 'यो विषयानुरागः" "कोवा विमुक्तिर् ?" "विषये विरक्तिः"। सो अपनी प्रतिज्ञा उन ने पूर्ण की ही तो सही।

कई पुत्रों को उपदेश करके आपने विरक्त जीवन मुक्त कर दिया। जब सबसे छोटा पुत्र श्रीमन्दालसा जी के हुआ, तो उनके पति ने आप से बहुत विनय निहोरा किया कि "इस पुत्र को भी उपदेश देकर विरागी मत बनादो, इस्को राज्य तथा वंश के निमित्त गृहस्थरहने दो"।

यों, पति के विनय बश उस्को बन में न भेजा।

परन्तु पति समेत आप बन को चलीं और उसी समय एक श्लोक लिख मुद्रिका में रखके अलर्क जी को दे दिया कि तुम्हें जब कोई कष्ट पड़े तो इस्को खोलके देखना। (श्लोक) संगः सर्वात्मनात्याज्यः; यदित्यक्तुं न शक्यते। सद्भिरेव प्रकर्तव्यः; सत्सङ्गो भव भञ्जनः ॥१॥

बन में जा आपने अपने ज्येष्ठ पुत्रों से कहा कि "जिस्में मेरी प्रतिज्ञा भंग नहो इस लिये जाके किसी भांति अपने भाई अलर्क को भी विरक्त करके प्रभु के चरणों में लगादो"। आज्ञा मान, आके, उन्हों ने प्रथम अलर्क को बहुत उपदेश किया परन्तु उपदेश से विषय वासना नहीं छूटी। तब अपने मामू काशीराज को

सेना सहित लाके पुर को घेर लिया ॥ इस आपदा के समय अलर्क जी ने मुद्रिका को खोल के देखा तो लिखा पाया कि " संसार के संग को सर्वथा त्याग करना चाहिये और जो त्याग न सके तो समीचीन महात्माओं का संग करे क्योंकि सत्सङ्ग भवरोग नाशक है " यह विचार श्री अलर्क जी राज को परित्याग कर रात्रि में निकल के श्री दत्तात्रेय जी से मिले।

एवं उनके उपदेश से भगवत की उपासना करके मोक्ष पद को प्राप्त हुए ॥

श्री अलर्क जी ने अपनी आंखें निकालके एक बेद पाठी ब्राह्मण को उनके मांगने पर देदी थीं ॥

अलर्कजी एक समय कालंजर के समीप वन में विचरने लगे; तो एक दिव्य सर देखा, जिसके तट में एक मृतक मनुष्य पड़ा था; इतने में दो पिशाचों में झगड़ा होने लगा, एक कहताथा कि मैं खाऊंगा, दूसरा कहता था कि मैं।

अलर्क जीने पूछा क्यों विवाद करते हो ? तब दोनों पिशाच बोले कि वस्तु एकही है और हम दोनों भूखे हैं; उदर कैसे भरे ? श्री अलर्क जीने कहा कि "एक शव को खावे, और दूसरा मेरी देह को"
यह सुन प्रसन्न हो दोनों ने "वरं ब्रूहि" कहा।

श्री अलर्क जीने पूछा कि तुम दोनों कौन हो ? तब उसी क्षण, एक श्री विष्णु, दूसरे शिव जी होके

बोले कि "हम विष्णु शिव हैं" अतः पर, स्तुति कर उनसे यह बर मांगा कि "सकल विश्व सुखी रहे, किसी वस्तु का कोई दुःखी न रहे," यही बर दीजिये।

इस पर दोनों ने आज्ञा की कि यह नहीं होसक्ता कर्म सब के पृथक २ हैं; परन्तु हमारी कृपा से अब यह सामर्थ्य तुझ में रहेगा कि जिस वाञ्छा से तेरे पास कोई आवेगा तू पूरी कर सकेगा; अन्त में तुझे मोक्ष प्राप्त होगा"।

इस प्रकार श्रीविष्णु जी और शिव जी, अलर्क जी की परीक्षा ले बरदे, निज निज स्थल को चले गए॥

(१०५/८४२) छप्पै।

तिन चरण धूरि मो भूरि सिर, जेजे हरि माया तरे॥ रिभु, इक्ष्वाक रु ऐल, गाधि, रघु, रै, गै, शुचि शतधन्वा। अमूरति, अरु रंति, उतंग, भूरि, देवल, बैवस्वत मन्वा॥ नहुष, जजाति, दिलीप, पूरु, यदु, गुह, मान्धाता। पिप्पल, निमि, भरद्वाज, दक्ष, सरभंग, सँघाता॥ संजय, समीक, उत्तानपाद, जाग्यवल्क, जस जग भरे। तिन चरण धूरि मो भूरि सिर, जेजे हरि माया तरे॥८॥ (१२/५१६)

"ऐल"=इला के पुत्र पुरूरवा। "सभँग सँघाता"=श्रीसभँग प्रभृति दण्डक वन के मुनिवृन्द ।

वार्त्तिक तिलक ।

उन श्री भगवद्भक्तों के चरणों की धूर बहुतसी बहुमान्यपूर्वक मेरे सीस पर है, कि जो जो भगवान् की माया के पार होगए हैं, और उन पवित्रात्माओं के सुयश सम्पूर्ण जगत में भर रहे हैं ॥

१ श्री ऋभु जी	१६ श्री दिलीप जी
२ श्री इक्ष्वाकु जी	१७ श्री पूरू जी
३ श्री ऐल (पुरूरवा) जी	१८ श्री यदु जी
४ श्री गाधि जी	१९ श्री गुह (निषाद) जी
५ श्री रघु जी महाराज	२० श्री मान्धाता जी
६ श्री रय जी	२१ श्री पिप्पलायन जी
७ श्री गय जी	२२ श्री निमि जी
८ श्री शतधन्वा जी	२३ श्री भरद्वाज जी
९ श्री अमूरति जी	२४ श्री दक्ष जी
१० श्री रन्तिदेव जी	२५ श्री शरभंग जी
११ श्री उत्तंक जी	२६ श्री संजय जी
१२ श्री देवल जी	२७ श्री समीक जी
१३ श्री वैवस्वत मनु जी	२८ श्री उत्तानपद जी
१४ श्री नहुष जी	२९ श्री याज्ञवल्क्य जी
१५ श्री ययाति जी	(३०) इत्यादि, इत्यादि ।

(श्लोक) इक्ष्वाकुरैल मुचुकुन्द विदेह गाधि रघ्वम्बरीष सगरा गय नाहु-षाद्याः। मान्धात्रलर्क शतधन्वनु रन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्त रयो दिलीपः॥१ सौभर्युतंक शिवि देवल पिप्पलाद् सारस्वतोद्धव पराशर भूरिषेणः। येऽन्ये विभीषण हनूमदुपेन्द्र दत्त पार्थार्ष्टिषेण विदुर श्रुतिदेव वर्याः ॥२॥ ते वै विदन्त्यति तरंति च देव मायां स्त्री शूद्र हूण शवरा अपि पाप-जीवाः। यद्यद्भुत क्रम परायण शील शिक्षा स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥३॥ (श्रीमद्भागवते)

श्रीरन्तिदेव जी।

(१०६/८४५) टीका। कवित्त।

अहो! रंतीदेव नृप सन्त दुसकंत बंस अतिही प्रशंस सो अकास वृत्ति लई है। भूखे को न देखिसके, आवै सो उठाइ देत, नेति नहिं करैं भूखे देह छीन भई है॥ चालीस-औ-आठ दिन पाछे जल अन्न आयो, दियो विप्र शूद्र नीच श्वान, यह नई है। हरि ही निहारै उन मांझ, तब आए प्रभु, भाए, जग दुख जिते भोगौं, भक्ति छई है ॥९४॥ (६२९–५३५)

"आकाश वृत्ति"=ऐसी वृत्ति कि जीविका के अर्थ कर्म चेष्टा शून्य; ऐसी वृत्ति कि जो कुछ अनाहूत अकस्मात (विन प्रबन्ध जैसे आकाश से जल) आजावे, उसी को लेना। "छीन"=क्षीण, खिन्न, दुर्बल।

वार्त्तिक तिलक।

राजा दुष्यन्त के वंश में महाराज श्रीरन्तिदेव जी अति आश्चर्य्य प्रशंसनीय सन्त हुए, कि जिन्होंने आकाश वृत्ति जीविका ग्रहण की। तिसपर भी उस आकाश वृत्ति में भी जो कुछ भोजन आ जाता था सो भी भूखों को दे दिया करते थे क्योंकि किसी को

भूखा नहीं देख सकते थे। अपने लिये यत्न वा संचय नहीं करते थे अतएव भूख से शरीर अति दुर्बल हो गया।

एक बेर अठतालीस उपवास हो चुकने पर अन्न जल हरि कृपा से आया। सो, प्रथम एक भूखे ब्राह्मण को खिलाया; फिर उसके पीछे एक भूखे शूद्र को दिया; पुनः एक नीच को, और फिर शेष भूखे श्वान को खिला पिला दिया। यह इनकी कृपालुता तथा सम दृष्टि की नवीन रीति है, क्योंकि सबों में वे सर्वात्मा हरि ही को देखते थे। जब जल पर्य्यन्त भी दे दिया और आप भूखे वरंच प्यासे रह गए, तब इनकी दया और सम दृष्टि देख के प्रभु ने आके दर्शन दिया परम कृतार्थ किया। प्रभु को प्रसन्न पा यह बर मांगा कि सब जीव मात्र का दुःख मैं ही भोगूं और वे सब के सब दुःखरहित हो जाँय॥ प्रभु अति प्रसन्न हो उनको स्त्री पुत्र तथा पुत्र बधूतीनो सहित विमान पर बैठाके निज लोक को ले गऐ॥

ऐसे विलक्षण सन्त थे तब तो उनकी भक्ति की महिमा जग में छा रही है॥

"दुसकंत" नाम दुष्यन्त जिनकी स्त्री शकुन्तला संज्ञक, प्रसिद्ध है॥

श्रीगुह निषाद जी।

जिस समय श्रीभरत जी महाराज प्रभु के दरशन

को चित्रकूट जा रहे थे उस समय कुछ और संदेह होने के कारण, श्रीनिषाद जी ने पहिले यह चाहा था कि यद्यपि श्रीभरत जी की सेना अपार है तथापि अपनी अति अल्प सेना सहित अपने को श्रीसीताराम हेतु न्योछावर कर देना चाहिये सो यह संकल्पकर लड़ने के लिये इच्छा की थी। किंतु जब प्यारे भरत जी को मन कर्म बचन से श्रीसीताराम भक्त पाया, तब श्रीभरत जी की सेवा की।

पुन: जिस समय श्रीसर्कार रघुवंश मणि आनंद कंद, लंका पत्तन का विजय हस्त गत कर, श्रीभरद्वाज जी के आश्रम पहुँचे, उस क्षण निज दूत श्रीपवनसुत जी को अवध श्रीभरत जी की चेष्टा देखने को भेजा और निषाद जी से भी श्रीमान् अनंत ऐश्वर्य्य ने अपना सुखागमन निवेदन करने को श्रीहनुमान जी को आज्ञा दी। उसी समय "द्रुमिल राक्षस" को जो श्रीअयोध्यानिवासी जनों को दुःख देने को प्राप्त था, निषाद राज ने शृंगवेर पुरही में यह विचार रोक डाला, कि "यह दुष्ट स्वामिपुर को न जाने पावै, बरन बीचही में इस को यमद्वार दिखलाऊँ"। तीन सहस्र धनुर्धरों को साथ ले, "द्रुमिल" से श्रीनिषाद जी तीन दिन से युद्ध कर रहे थे; उस समय तक निषादराज द्रुमिल की सात सहस्र सेना मार चुके थे, शेष तीन सहस्र सेना थी; परन्तु निषाद राज बड़े थके तथा कुछ हत पराक्रम

प्रतीयमान होते थे । वहीं उसी क्षण पहुंचतेही श्रीरामदूत जी ने हांक दिया, कि जिसमें निषाद राज का बल संवर्द्धन हो " मैं श्रीरामदूत पहुंच गया । " यह हांक सुनाकर तीन सहस्र राक्षसों को लाङ्गूल में लपेट वायु मण्डल को पहुँचा दिया; और निषाद राज जी ने द्रुमिल के साथ मल्लयुद्ध करिके उसको पृथ्वी में पटक, उसके हृदय में शस्त्र चुभा दिया, जिस्से द्रुमिल का प्राणान्त होगया ॥ इसके अनन्तर दोनों श्रीराम प्रेमी परस्पर मिले; और निषाद राज से स्वामि आगमन जना करके श्रीमारुति जी भरत जी के समीप चलेगये । श्रीनिषाद जी श्रीभरद्वाज जी के आश्रम को प्राणनाथ से मिलने चले ॥

(छन्द)

पदकमलधोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम! रोउरि आन दसरथसपथ सब सांची कहौं ॥
बरु तीर मारहिं लषन पै जब लगि न पांव पखारिहौं ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहौं ॥१॥

(कवित्त) प्रभुरुख पाइके बुलाइ बाल घरनीको, बन्दिकै चरण चहुंदिशि बैठे घेरि घेरि । छोटोसो कठौतो भरि आनि पानी गंगा जी को, धोइ पाय पियत पुनीत बारि फेरि फेरि ॥ तुलसी सराहे ताको भाग सानुराग, सुर बरषि सुमन जय जयति कहैं टेरि टेरि ॥१॥

विविध सनेहसानी बानी असयानी सुनि, हँसे राघवजानकी लषनतन हेरिहेरि ॥१॥

(दो०) पदपखारि, जलपान करि, आपु सहित परिवार। पितर पारुकरि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउलेइपार १

(१९५) टीका। कवित्त।

भीलन को राजा "गुह" राम अभिराम प्रीति भयो बन बास, मिल्यो मारग में आइकै। करौ यह राज जू विराजि सुख दीजै मोको, बोले चैनसाज तज्यों आज्ञा पितु पाइकै॥ दारुण वियोग अकुलात दृग अश्रुपात पाछे लोहु जात, वह सकै कौन गाइकै। रहे नैन मूंदि "रघुनाथ बिन देखौं कहा?" अहा! प्रेम रीति, मेरे हिये रही छाइकै ॥९५॥ (६२९-५३४)

"चैनसाज"=राज्य। "जात"=बहता था, झरता था, निकलता था।

वार्त्तिक तिलक।

सम्पूर्ण बन बासी भिल्लों के राजा शृङ्गबेरपुर बासी श्रीगुहनिषादराज जी की, प्राणनाथ शोभाधाम श्रीरामचन्द्र कृपालु जी से अतिशय अभिराम प्रीति थी, कि जिनको प्राणनाथ आत्म समान सखा मानते कहते थे। सो जब श्रीप्रभु बन बिहार मिसु सुरमुनि जनों का दुःख छुड़ाने के लिये चलके, श्रीगंगाकूल में शृङ्गबेरपुर के समीप आए; तब निषाद जी श्रीप्रभु का बनगवन सुन, पगों से चलके, समाज सहित प्राणनाथ से मिले। प्रभु ने हृदय से लगा के अपने परम

समीप बैठा लिया। तब निषादराज हाथ जोड़ बोले कि "हे सुखरास रघुबीर जी! चलिये, यह राज्य आपका ही है, यहीं विराज, राज्य करते हुए, मुझे सुख दीजिये; मैं आपका सेवक हूं, आप मेरे स्वामी हैं, मैं सब प्रकार से सेवा करूंगा।"

यह सुन, प्राणेश्वर श्रीरघुनन्दन जी ने उत्तर दिया कि "हे सखे! इस बात को क्या कहना, है आपका राज्य तथा आप मेरे हैं ही, परन्तु मैं तो श्रीपिता जी की आज्ञा से राज्य भोग सुख सामग्री त्याग के चला हूं चौदह वर्ष पर्य्यन्त बन ही में वसूंगा"। इतना सुन्ते ही श्रीनिषादराज विह्वल होगए। तब श्रीप्राणपति प्रभु बहुत प्रकार से इनको समझा के श्री-चित्रकूट में जा बसे।"

(दो०) गमन समय अंचल गह्यो, छाड़न कह्यो सुजान। प्राण पियारे! प्रथमही अंचल तजौं कि प्रान?

यहां श्रीनिषादराज जी अपने प्राणप्रिय मित्र के दारुण वियोग से अत्यन्त व्याकुल हुए; आंखों से अश्रुपात की धारा निरन्तर बहने लगी; यहां तक कि कुछ दिन पीछे नेत्रों से रक्त टपकने लगा। हा! वह दशा कौन कह सकता है! प्रेमनिधि निषाद जी अपनी आंखें मूंदेही रहाकरते थे, इस विचार से कि "मित्रवर प्राण प्रिय श्रीरघुनाथ जी के बिना और क्या देखूं!"

अहा! यह इनके परम प्रेम की रीति मेरे हृदय में छारही है मुख से कहते नहीं बनती॥

(दो) "जासु संग सुख लहि रह्यौं, सारे दुख बिसराइ। ता प्रियतम के विरह में छुटत न यह तनु हाइ!"

(सवैया)

प्रीति की रीति कछू नहिं राखत जाति न पांति नहीं कुल गारो। प्रेम के नेम कहूं नहिँ दीसत लाज न कानि, लग्यो सब खारो॥ लीन भयो हरि सौं अभ्यन्तर, आठहु याम रहै मतवारो। "सुन्दर" कोउ न जानि सकै यह प्रेम के गांव को पैंड़ोहि न्यारो॥

(पद) सदनमोरे, आवो हो बांके यार! दशरथ राज कुमार! कित गयो? हाय! बिहाय सेज को, करद् करेजे मार॥ हाय! निहारत डगर तिहारी होइ गई भिनुसार। कित जाऊं? पाऊं कहँ तुमको? जग मो को अँधिआर॥ तुम्हरे कारन, हम सब त्यागा, लाज काज घर बार। बिरह बारि बिच, बूड़त तुम बिनु! कौन लगै है पार? सुधि लीजे; दीजे देखाय छबि; प्रीतम प्राण अधार! जो नहिँ अइहौ, मैं मरि जइहौं, "जीत" पुकार पुकार॥

(३९६) टीका। कवित्त।

चौदह बरस पाछे आए रघुनाथ नाथ; साथ के जे भील कहैं "आए प्रभु देखिये"। बोल्यो "अबपाऊँ कहां होति न प्रतीति क्यौंहू प्रीति करि मिलै राम,

कहि "मोकी पेखिये ॥ परसि पिछाने लपटाने सुख सागर समाने प्राण पाये, मानो भाल भाग लेखिये। प्रेम की जू बात क्योंहूं बानी में समात नाहिं अति अकुलात कही कैसेकै बिशेषिये ॥१६॥ (६२९-५३२)

"पेखिये"=देखिये। "पिछाने"=पहिचाने।
"क्योंहूं"=किसी भांति से भी।

वार्त्तिक तिलक।

इस प्रकार चौदह बर्ष व्यतीत हुए पर निषाद राज के नाथ श्रीरघुनाथ जी आ, पुष्पक विमान से उतर, श्री निषादराज से मिलने को पधारे; सो देख, इनके साथ के भिल्लोंने दौड़ के श्रीनिषाद जी से कहा कि "आप के प्रभु आए, आंखें खोलके दर्शन कीजिये।" तब आप बोले कि "मैं प्राणनाथ प्रभु को अब कहां पासकता हूं, मुझे किसी प्रकार से भी प्रतीति नहीं होती"।

इतने में स्वयं प्राणप्रिय मित्रवर जी आ, हाथों से उनको उठा, सप्रेम हृदय में लगा, कहने लगे कि "सखे! नयन उघार मुझको देखो॥ श्रीप्रभु के वचनामृत सुन, तथा दिव्य मङ्गल विग्रह का सुखद स्पर्श पहिचान, ये भली भांति से लपट गए।

श्रीनिषादराज से मिलने का सुख श्रीभक्तवत्सल कृपालु जी को श्रीभरतजी के ही मिलन सुख के समान हुआ; और श्रीनिषाद राज जिस असीम आनन्द-

सिन्धु में मग्न हुए, सो सर्वथा अगाध और अपारही है। "मृतक शरीर प्राण जनु भेटे" और ये अपने भाल में लिखे सुन्दर भाग्य का पूर्ण उदय जानके धन्यतर कृतार्थ हुए॥

प्रेम की बातें वाणी में किसी प्रकार समातीं ही नहीं, प्रीति की वार्त्ता वर्णन करने के लिये बुद्धि बानी अतिशय अकुलाती है परन्तु किस विशेषण से उसकी व्याख्या की जासवे॥

(दो०) प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
माथो बदले मिलत है, भावै सो लैजाय॥१॥
आंखड़ियन झाईं पड़ी, पन्थ निहारि निहारि।
जीभड़िया छालेपड़े, नाम पुकारि पुकारि॥२॥
छनक चढ़ै, छन ऊतरै, सो तो प्रेम न होइ।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोइ॥३॥

श्रीऋभु जी।

श्रीऋभु जी ब्राह्मण के बालक थे एक दिन श्रीउमामहेश्वर जी के मन्दिर हो के चले जा रहे थे, शिव लिङ्ग को बहुत चिकना सुन्दर देख चित्त में पूजन की श्रद्धा हुई; सो एक फूल (जो उस समय इनके हाथ में था) उसको उस विग्रह पर रख के बोले कि "नमः शिवायै च नमः शिवाय"। आशुतोष औढरढरन महादानी श्रीगिरिजावर जी के मन्दिर से वाणी हुई कि "बरमांग"।

इन ने कर जोड़ के प्रार्थना की कि "महाप्रभो! आप से भी बड़ा जो कोई परम पुरुष हो, आप कृपा करके उनका दर्शन इस अबोध बालक को अपनी कृपा से करा दीजिये"।

(स०) देवनके शिरदेव बिराजत ईश्वरके शिर ईश्वर कहिये। लालनके शिर लाल निरंतर खूबनके शिर खूबनलहिये॥ पाकनके शिर पाक शिरोमणि देख बिचार वही दृढ़ गहिये। सुन्दर एक सदा शिर ऊपर और कछू हमको नहिं चहिये॥

इस भारी वर की याचना से श्री गिरजापति कुछ विचारने लगे। इतनेही में, अपने भक्तराज महाभागवत परमप्रिय देव देव महादेव के वचन के पूरा करने के हेतु, श्रीहरि स्वयं वहां प्रगट होगये। करुणासागर भक्त-वत्सल त्रिभुवनपति जगदाधार शोभाधाम को देख-तेही, श्रीशिवजी भी प्रत्यक्ष हो, प्रेम और हर्ष में चकित होते हुये द्विजबालक (श्रीऋभु जी) से बोले कि "वत्स! ले जिन दीनबन्धु ब्रह्मण्यदेव जगतत्राता प्राणेश्वर को तू ढूढ़ता था, सो तेरे सुकृतियों के फल कारणरहित कृपालु यही हैं; तेरे भाग्य धन्य, तू धन्य, तेरी माता और तेरे गुरू धन्य"॥

(सवैया)

होत बिनोद जितौ अभिअंतर सो सुख आप में आपही पैये। बाहिर क्यों उमग्यो पुनि आवत कंठ ते

सुन्दर फेर पठैये। स्वाद निवेर निवेरयो न जात मनो गुड़ गूंगहि ज्यौं नित खैये। क्या कहिये कहते न बनै कछु जो कहिये कहतेही लजैये॥

श्रीऋभुजी को भक्ति वरदान देके दोनों अन्तर्धान होगये॥

श्री इक्ष्वाकु जी।

श्रीसूर्यवंश में महाराज श्रीइक्ष्वाकु जी बड़े ही प्रतापी हुये आपकी राजधानी यही साकेतपुरी अर्थात् श्रीअयोध्या जी थी आप तप बल से शरीर त्याग कर परमधाम को चलेगये,

आपने तप करके जब बरदान मांगा था तो, "मुसकाइ कह्यो हरि तेरेइ बंशमें खेलिहौं औध के अंगन में"

पुराणों में आपकी विचित्र कथा है। उसके लिखने की यहां कोई आवश्यता नहीं देखी।

श्रीऐल (पुरूरवा) जी

राजा पुरूरवाही का नाम ऐल है क्योंकि उनकी माता इला जी थीं, और पिता श्रीबुध जी श्रीइला जी की कथा पुराणों मैं विचित्र लिखी है जिसकी संक्षिप्त वार्ता यह है कि एक महीना यह स्त्री रहती थी और दूसरे महीने में पुरुष अर्थात् राजा सुद्युम्न, अस्तु।

सोई इला जी के पुत्र श्रीपुरूरवा जी उर्वशी अप्सरा

के संग और प्रेम में बहुत दिन तक मृत्युलोक और गन्धर्वलोक में रहे। पुनः जब पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आये तो पिछली बातें स्मरण होने से इनको बड़ा विराग हुवा जिस विराग का फल श्रीहरिपद अनुराग पाकर आप हरि कृपा से वैकुण्ठ को गये।

श्री गाधि जी।

राजा श्रीगाधि जी के ही पुत्र श्रीविश्वामित्र जी हैं जिनने साक्षात् प्रभु को अपनी वात्सल्य भक्ति से प्रसन्न किया कि जिनको प्रभु ने श्रीवशिष्ठ जी के समान आदर दिया, यह कथा श्री मानस रामायण जी में सब प्रेमियों ने देखीही है॥

गाधि जी की बेटी के पुत्र श्री यमदग्नि जी हैं॥

राजा गाधि बड़े भक्तिमान हुये॥

महाराज श्रीरघु जी।

श्रीअयोध्या जी के महाराज श्रीरघु जी का प्रताप चौदहो भुवन में छाया हुआ था॥

एक समय उनकी महारानी को देख एक ब्राह्मण वैसीही स्त्री पाने के लिये श्रीशिव जी को अपना मस्तक अर्पण कर देना चाहा। यह वार्त्ता सुन के महाराज ने अपनी स्त्री राज समेत उस ब्राह्मण देवता को दे दी और उसी विप्र के मनोरथ हेतु इन्द्र ब्रह्मा तथा स्वयं

श्रीवैकुण्ठनाथ से बहुत विनय प्रार्थना की कि जिससे प्रसन्न होके उस ब्राह्मण ने वैकुण्ठ में निवास पाया ।

आप ऐसे प्रतापी हुये कि आपही के नाम पर वह वंश आज तक [रघुवंश के नाम से] प्रसिद्ध है और भाग्य की बड़ाई इससे अधिक और क्या कि श्रीसाकेत विहारी आपही के वंश में आके प्रगट हुये ।

श्रीरय जी ।

श्रीरय जी राजा पुरूरवा के पुत्र थे (उर्वशी अप्सरा जिनकी माता थी) (१) जय (२) विजय (३) रय (४) आयु (५) श्रुतायु (६) सत्यायु ये छः सहोदर भ्राता थे। "रय" इन में बड़े प्रतापी थे ॥

श्रीगय जी ।

महाराज श्रीप्रियव्रत जी के कुल में राजा "नक्त" के पुत्र श्रीद्युति जी से हुये । एक बार यज्ञ में आपने ऐसा मनोरथ किया कि जिस प्रकार से देवता लोगों ने कृपा कर के प्रत्यक्ष हो के अपना २ भाग लिया, वैसे प्रभु भी अनुग्रह करके प्रगट हों, पर जब ऐसा न हुआ तो राजा ने अन्न जल त्याग दिया और प्रभु की प्रतीक्षा करते रहे ।

सच्चे व्रत और प्रेम वाले पर हमारे प्रभु ने कब कृपा नहीं की है ? करुणाकर भक्तवत्सल हरि मख में आही तो पहुंचे ।

यज्ञ पूर्ण कर के राजा बद्रिकाश्रम जाय योगसे शरीर तज प्रभु के लोक में जा पहुंचे और उनकी धर्मपत्नी भी सती होकर पति से जा मिली ।

श्रीसतधन्वा जी ।

सतधन्वां की कथा (समन्तक मणि के सम्बन्ध में) श्रीमद्भागवत में विस्तारसे वर्णित है । इनको श्रीकृष्ण भगवान ने मारा और मुक्ति दी ।

श्रीउतंक जी ।

श्रीउतंग (उतङ्क) जी दण्डकबन बासी थे । उनके गुरू, स्वामी श्रीमतंग ऋषिजी, जब श्रीराम धाम जाने लगे तो उनको आज्ञा दी कि तुम इसी बन में भजन करो । यहीं श्रीसीतानाथ साकेत पति शार्ङ्गधर आवेंगे और कृपा करके तुम को दर्शन देगे सो वैसाही हुआ ।

श्रीदेवल जी; श्रीअमूर्त जी ।

श्रीदेवल जी, जो ब्राह्मण और मौनी थे, और श्रीहरिदास (अमूर्त) जी, ये दोनो बचपनही से त्यागी बड़भागी और रामानुरागी हुये ।

श्रीनहुष जी ।

एक नहुष श्रीसूर्य्यवंश में हुये हैं और दूसरे नहुष

श्रीचन्द्रवंश में। श्रीसूर्य्यवंशी नहुष जी श्रीअयोध्या जी के राजा थे। जब गौतम जी के शाप से वा ब्रह्म हत्या के भय से इन्द्र मशक सरिस लघु होके मानसरोवर के कंज नाल में जा छिपे तब नहुष जी देवतों के राजा इन्द्र के स्थान पर बिठाये गये। वह उस समय अपने यान को मुनियों के कन्धे पर उठवा के इन्द्रानी के पास चला। उन ब्राह्मणों के शाप से सर्प होकर मृत्युलोक में गिरा और एक गिरि कन्दरा में काल बितानेलगा। भागवश श्रीयुधिष्ठिर जी उधर से जा निकले उनके पुण्य प्रभाव से शाप से उधार होके परम धाम को पाया।

श्रीययाति जी।

श्रीनाहुषजी अर्थात् श्रीनहुष जी के पुत्र श्रीययाति जी, आखेट को बनमें गये वहां श्रीशुक्राचार्य्य की बेटी देवजानी से बहुत बात चीत हुई; संक्षेप यह कि शुक्राचार्य्य जी ने देवजानी का विवाह राजा ययाति से करदिया। उनसे दो लड़केहुये।

श्रीशुक्राचार्य्य जी के शाप से वृद्ध हो गये, फिर अपने पुत्र की सहायता से आपने युवावस्था पाई, अन्त को घर छोड़ बन में गये।

निदान भगवत भजन के प्रभाव से परम धाम पाया।

श्रीदिलीप जी ।

श्रीदिलीप जी सातो द्वीप के राजा थे; आप की राजधानी श्रीअयोध्या जी थी ।

एक दिन रावण विप्र वेष बनाके आप के पास पहुंचा, उस समय महाराज पूजा कर रहे थे ।

एक कुश और किंचित जल दक्षिण दिशा की ओर फेंका; यह देख रावण को संदेह हुआ और उसने पूछा कि आपने यह क्या किया ? महाराज ने उत्तर दिया कि बन में गायें चररही थीं, उनको सिंह ने पकड़ना चाहा था । इसी लिये मैंने मंत्रित कर के वह तृण फेंका है, सो उस बाण ने बाघ को मार के गायों की रक्षा की और लंका में जाके रावण का घर जलाने लगा इस लिये उसके पीछे जल छोड़ दिया कि जिसने वह आग बुझा दी है ।

यह सुनकर रावण झटपट चलदिया और जाकर देखा तो आप की सब बातें ठीक पाईं और आश्चर्य्य तथा शंका में डूबके फिर कभी यहां (श्रीअयोध्या जी) आने का नाम न लिया वरन् महाराज दिलीप के नाम से डरा करता था ।

यशस्वी महाराज दिलीप जी ने अपने पुत्र श्रीभगीरथ जी को राज देकर वनजाय श्रीगंगा जी के हेतु तप करते २ तन तज दिया ।

आप का मनोरथ श्रीभगीरथ जी ने पूरन किया कि जिनकी कथा पृष्ठ २३२ में लिखी जा चुकी है।

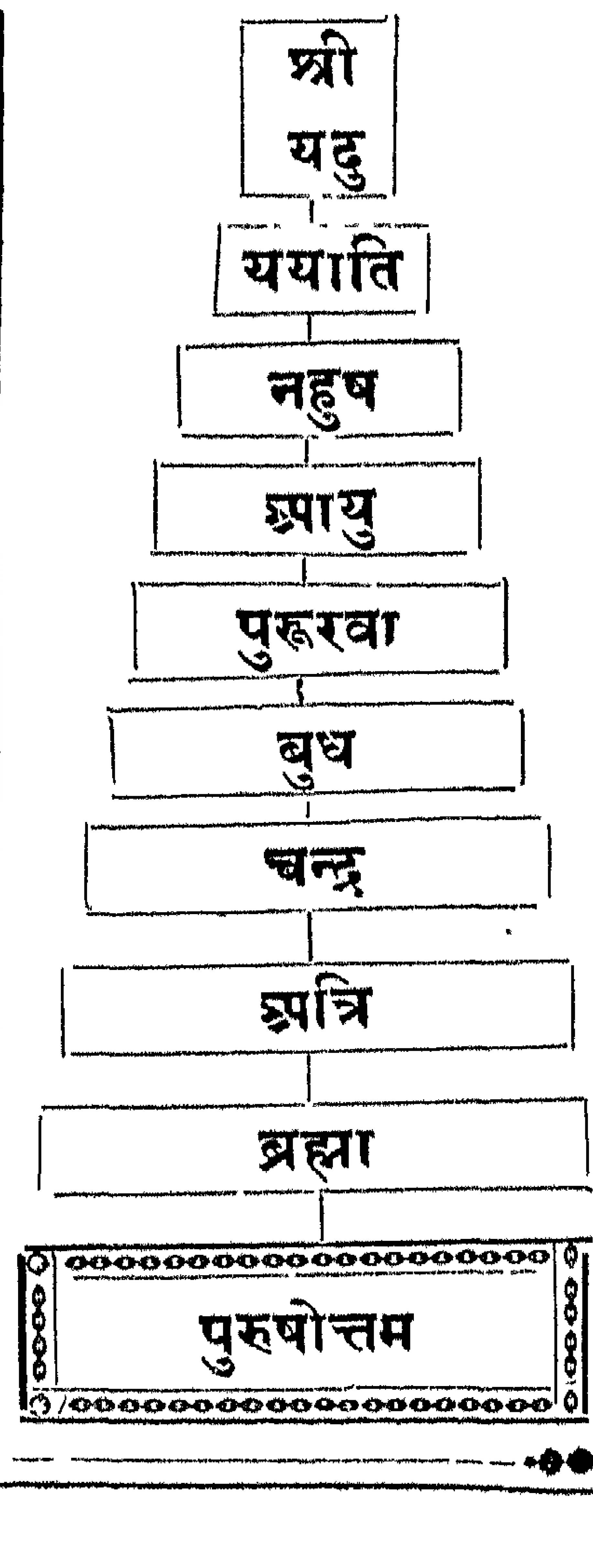
श्रीयदु जी।

श्रीयदु जी, राजा श्रीययाति के पुत्र थे देवजानी के गर्भ से।

श्रीदत्तात्रय जी महाराज ने कृपा कर के राजायदु के यहां आकर दर्शन दिया और इनके सतसङ्ग से राजायदु को विवेक उत्पन्न हुआ और राजतज बन में जा भगवत भजन कर परम धाम को गये।

आपही के वंश में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र प्रगट हुये थे।

(१) श्री पुरुषोत्तम भगवान् के (२) श्री ब्रह्माजी; उनके (३) श्री अत्रिजी; जिनके (४) श्री चन्द्रजी; जिनके (५) श्री बुधजी; जिनके (६) श्री पुरूरवा जी; जिनके (७) आयु; जिनके (८) श्री नहुषजी; जिनके (९) श्री ययातिजी; (१९) उनके पुत्र श्री यदु जी और श्री "पुरु" जी थे॥



श्रीमानधाता जी।

श्रीमानधाता जी श्रीअयोध्या जी के राजा बड़े प्रतापी और धर्म्मात्मा थे। श्री "सौभरी" ऋषि ने आप से मांगा कि "मुझे अपनी एक कन्या दीजिये," राजा ने उत्तर दिया कि "बहुत अच्छा, मेरी पचासो कन्याओं में से जो आप को बरे, आप उसको लेजाइये"

मुनि को देख के सबही ने उनको बरा; तब राजा ने पचासो कन्यांए मुनि को दान कर दीं।

श्रीविदेहनिमि जी।

महाराज श्री "निमि" जी विदेह ने जिनकी राज धानी श्रीमिथिलापुरी थी, यज्ञ करना चाहा; उसी समय उनके पुरोहित श्री १०८ वशिष्ठ जी महाराज को श्रीइन्द्र जी ने बोलालिया। जब महामुनीश्वर श्रीबशिष्ठ जी इन्द्रलोक से लौट आये, तब देखा कि राजा तो गौतम जी से यज्ञ करारहे हैं; क्रोध में आके राजा को शाप दिया कि तू विदेह हो जा; राजा ने भी वशिष्ठ जी को शापदिया कि आप भी विदेह हो जाइये। यह देख श्रीब्रह्मा जी ने वशिष्ठ जी को देह (शरीर) दिया; और राजा को यह आशीष कि "तुम्हारा बास सब की आंखों की पलकों पर रहे"!

तब से, वहां के राजा "विदेह" कहलाने लगे।

महाराज श्रीनिमि जी के पास एकदिन नवो योगेश्वर कृपाकर पहुंचे महाराज ने आदर सत्कार पूजा के उपरान्त, आप से कई प्रश्न पूछे; और, नव योगीश्वरों से एक २ करके सबका उत्तर पाया; कि जो विस्तार पूर्व्वक श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में है। उस्को अवश्यही पढ़ना सुन्ना चाहिये। पृष्ट २२९

श्रीनिमि जी महाराज एक अंश से तो सब की पलकों पर बसते हैं, और एक रूप से श्रीसाकेत मे विराजते हैं।

श्रीभरद्वाज जी।

महामुनि श्री "भरद्वाज" जी का यश श्री "मानस रामचरित्र" में प्रसिद्ध है, कि जिनकेही मनोरम प्रश्न पर श्री "याज्ञवल्क" जी ने परम हित कारिणी कथा प्रगट की आप की महिमा कहांतक वर्णन कीजावे कि जिनके अतिथि श्रीराम प्राणप्रिय "भरत" जी हुये, पुनः स्वयं प्रभु श्रीजनकनन्दिनी जी और लाल लाड़ले श्रीलषण जी समेत बड़े प्रेम से इनके आश्रम में आए।

श्रीतीर्थराज प्रयाग में आप का पावन आश्रम आज भी प्रसिद्ध है।

श्रीदक्ष जी।

श्रीदक्ष जी ने एक पहाड़ पर भजन किया, भगवत ने प्रसन्न होकर दर्शन दे यह आज्ञा की कि "पहिले

गृह में रह के भोग विलास और प्रजा उत्पत्ति करलो तब मेरे धाम में आना ”।

श्रीदक्ष जी के, कई वेर, दश दश सहस्र बेटे हुये और इनने सब को सृष्टि हेतु तप करने के लिये “नारायण सर” पर भेजा; परन्तु, “श्रीनारद उपदेशेउ आई, ते पुनि भवन न देखेउजाई ”।

तब, श्रीब्रह्मा जी के उपदेश से श्रीदक्ष जी ने साठ कन्यायें उत्पन्न कीं; जिनकी कथा श्रीमद्भगवत में विस्तार पूर्वक है, अस्तु।

अन्ततः, श्री हरिहर कृपा से श्रीदक्ष जी ने परम गति पाई।

श्रीपुरु जी।

श्री“पुरु” जी श्रीयदु जी के भाई थे और भगवद्भक्त॥

श्रीभूरिषेन जी।

श्रीभूरिषेन जी बड़े भक्त थे॥

श्रीवैवस्वतमनु जी।

चौदह में प्रथम श्रीस्वायंभू मनु जी हैं कि जिनकी धर्मपत्नी श्रीसतरूपा जी हैं कि जिनकी कथा पृष्ठ ८६ में लिखी जा चुकी है। शेष तेरह मनु और हैं;

मनु और मन्वन्तर।

अथ चौदहो मनु के नाम—

१ श्रीस्वायम्भू मनु जी	८ सावर्णि मनु
२ स्वारोचिष मनु	९ दक्ष सावर्णि मनु
३ उत्तम मनु	१० ब्रह्म सावर्णि मनु
४ तामस मनु	११ धर्म सावर्णि मनु
५ रैवत मनु	१२ रुद्र सावर्णि मनु
६ चाक्षुष मनु	१३ दैव सावर्णि मनु
७ श्रीवैवस्वत मनु	१४ इन्द्र सावर्णि मनु

☞ जैसे सातो दिनों का एक "सप्ताह", तथा बारहो महीनों का एक "वर्ष" हुवा करता है, वैसेही सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग इन चारों की एक "चौकड़ी" ("चतुर्युग") जानिये। हां तो ऐसे ऐसे सहस्र चतुर्युगों वा १००० चौकड़ियों का, केवल "एक-दिन-श्री-ब्रह्मा-जी-का" होता है; सो, ब्रह्मा जी के प्रत्येक दिन में चौदह मनु होजाया करते हैं। अर्थात् एक एक मनु, (१०००÷१४) कुछ ऊपर-एकहत्तर चतुर्युगों पर्य्यन्त रहा करते हैं। जब एक मनु की अवधि पूरी होती है तो उनके साथही साथ उस समय के इन्द्र, सप्तर्षि, मनुपुत्र, भगवदवतार, और देवता, ये छओ पहिले की जगह नए नए होते हैं। प्रत्येक समूह (इन छओं का), एक एक "मन्वन्तर" कहलाता है; जब चौदह मन्वन्तर हो चुकते हैं, अर्थात् चौदहो

(१) मनु (२) इन्द्र (३) सप्तर्षि (४) मनुपुत्र (५) भगवद्-वतार (६) देवता, की एक एक आवृत्ति हो चुकती है, तो तब, एक सहस्र चौकड़ियां व्यतीत होती हैं वा श्रीब्रह्मा जी का एक दिन पूरा होता है। ऐसे ऐसे दिनों से जब एक सौ वर्ष पूरे होते हैं, तब श्रीराम-इच्छासे पूर्व ब्रह्मा के स्थान में नए ब्रह्मा जी होते हैं। प्रभु की रचना की महिमा अपार तथा अकथनीय है।

(सवैया)

बेद थके कहि, तन्त्र थके कहि, ग्रन्थ थके निशि वासर गाते। शेष थके, शिव, इन्द्र थके, पुनि खोज कियो बहु भांति बिधाते ॥ पीर थके, औ फ़कीर थके, पुनि धीर थके, बहुबोलिगिराते। "सुन्दर" मौन गही सिध, साधक, कौन कहै उसकी मुख बाते ॥

श्रीशरभंग जी।

महामुनि श्री शरभंग जी की स्तुति जितनी की जाय थोड़ी है। आप कृतयुग से ही श्री सीताराम दर्शन के लिये तप कर रहे थे। इन्द्रने बहुत विघ्न किये पर श्रीराम कृपा से मुनि जी का मनोरथ सुफल हुआ ही ॥

(चौ०) पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा।
सुन्दर अनुज जानकी संगा ॥

(दो०) देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग। सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभंग॥

(चौ०) कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राज मराला॥ जात रहेउं बिरंचि के धामा। सुनेउं स्रवन बन अइहहिं रामा॥ चितवत पंथ रहेउं दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥ नाथ! सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥ सो कछु देव! न मोहि निहोरा। निजपन राखेहु जनमन चोरा॥ तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलउं तुम्हहिं तनु त्यागी॥ जोग जग्य जप तप व्रत कीन्हा। प्रभु कहं देइ भगतिवर लीन्हा॥ एहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदय छाड़ि सब संगा॥

(दो०) सीता अनुज समेत प्रभु, नीलजलद तनु स्याम। मम हिय बसहु निरंतर, सगुनरूप श्रीराम॥

(चौ०) अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपा वैकुंठ सिधारा॥ तातें मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति मन दयऊ॥ रिषि निकाय मुनिवर गति देखी। सुखी भये निज हृदयविसेखी॥ अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनतहित करुनाकंदा॥

श्रीसंजय जी।

सत्यबादी हरिभक्त श्री संजय जी, महर्षि श्री

"व्यास" जी के शिष्य और राजा "धृतराष्ट्र" के मन्त्री तथा पुरोहित थे। श्री प्रभु कृपा और व्यास जी के आशिष से इनको दिव्य दृष्टि मिली "श्रीभगवद्गीता" को पहिले श्रीसंजय जीही ने धृतराष्ट्र से कहा था। महा भारत में इनकी कथा बहुत विस्तार है। जब धृतराष्ट्र ने अपनी स्त्री गन्धारी समेत श्रीबिदुर जी के उपदेश से सप्तधारा गंगा के तट जाके प्राण त्याग किया, तब श्रीसंजय जी भी बिरक्त हो मुक्त होगये॥

—:o:—

श्रीउत्तानपाद जी।

श्रीमहाराज उत्तानपाद जी सब बिधि प्रशंसनीय हैं, कि जिनने भक्तराज श्री "ध्रुव" जी सा (पृष्ट १७४) पुत्र पाया। श्री ध्रुव जी को राज दे, बन जा, हरि का भजन कर आपने परांगति पाई।

श्रीयाज्ञवल्क्य जी।

श्रीसूर्य्य भगवान ने कि जिनसे श्रीयाज्ञवल्क्य जी ने विद्या प्रथमतः पढ़ी थी, अतिशय प्रसन्न होके यह आशिष दिया कि "जो तुमसे विवाद करेगा उस्का सीस स्वतः फट जावेगा।"

आप महर्षियों में हैं। आपने श्रीभरद्वाज जी के प्रश्न के उत्तर में, कृपा करके श्रीपार्वती शिव सम्वाद

"मानस राम चरित" गाया है। आप की स्मृति भी प्रसिद्ध है ही। आप अत्यन्त प्रेमी महाभागवत परम विवेकी महानुभाव हैं॥ आपकृत उपदेश विख्यात है॥

श्रीसमीक जी; श्रीपिप्पलाद जी।

श्रीसमीक जी तथा महा भागवत श्रीपिप्पलाद जी बड़े ज्ञानी ध्यानी प्रेमी थे॥

:o:

(१०९/८४२) छप्पै।

निमि अरु नौ योगेश्वरा पाद त्राण की हौं शरण। कवि[१], हरि[२], करभाजन[३] भक्ति रत्नाकर भारी॥ अन्तरिक्ष[४], अरु चमस[५], अनन्यता पधति उधारी॥ प्रबुध[६], प्रेम की राशि; भूरिदा आबिर होता[७]। पिप्पल[८], द्रुमिल[९], प्रसिद्ध भवाब्धि पार के पोता॥ जयन्ती नन्दन जगत के त्रिविधि ताप आमय हरण। निमि अरु नव योगेश्वरा पाद त्राण की हौं शरण॥ ९॥ (११/२११)

"पाद त्राण" =खड़ाऊं, पनही, जोड़ा, पगरखी।
भूरिदा=बहुत देनेवाला।

वार्त्तिक तिलक ।

महाराज श्री निमि जी और नौ (९) योगेश्वरों के पादत्राणों के मैं शरणागत हूं और उनके पादत्राण मेरे रक्षक हैं। उन नवो योगेश्वरों के नाम और गुण कहते हैं। श्री कवि जी, श्रीहरि जी, और श्री करभाजन जी, जो नवधा प्रेमा परादि भक्तियों के महारत्नाकर [समुद्र] हैं। श्री अन्तरिक्ष जी और श्री चमस जी, जो भागवत धर्म अनन्य मार्ग के उद्धार करने वाले हैं। श्री प्रबुद्ध जी जो भगवत प्रेम की राशि ही हैं। श्री अविर्होता जी जो भक्ति ज्ञान वैराग्य के महा दानी हैं। श्री पिप्पलायन जी और श्री द्रुमिल जी, जो संसार सागर से पार जाने के अर्थ प्रसिद्ध महा नौका हैं॥

श्रीनिमि जी की कथा पृष्ठ २७८ में देखिये॥

१ श्री कवि जी,	६ श्री प्रबुध जी,
२ श्री हरि जी,	७ श्री आविर्होता जी,
३ श्री करभाजन जी,	८ श्री पिप्पलायन जी,
४ श्री अन्तरिक्ष जी,	९ श्री द्रुमिल जी,
५ श्री चमस जी,	(१०) श्री निमि जी महाराज

(११) श्री जयन्ती जी देवी।

[पृष्ठ १९६, पंक्ति ९। १०। ११ देखिये॥]

देवी श्री जयन्ती जी।

श्री ऋषभदेव जी (पृष्ठ ६१) की धर्म पत्नी परम

भागवती देवी श्री जयन्ती जी धन्य हैं, कि जिनके एक सौ पुत्रों में, परम आनन्द दायक ये नवो पुत्र संपूर्ण जगत के जनों के तीनो ताप तथा काम क्रोधादिक मानसिक महा रोगों के हरने हारे, और श्री भरत जी भगवत के प्यारे, हुए। धन्य धन्य, जय जय॥

दम्पति के उन एक सौ पुत्रों में से ८१ महिसुर (ब्राह्मण) और शेष महीश (अवनीश) हुए॥

(११०/८४२) छप्पय।

पद पराग करुणा करो, जे नेता "नवधा भगति" के॥ श्रवण[1] परीक्षित; सुमति ब्यास सावक सुकीरतन[2]। सुठि सुमिरन[3] प्रह्लाद; पृथु पूजा[4]; कमला[5] चरनन मन॥ वन्दन[6] सुफलक सुवन; दास्य[7] दीपत्ति कपीश्वर। सख्यत्वे पारत्थ[8]; समर्थन आतम बलि[9] धर॥ उपजीवी इन नामके एते त्राता अगति के। पद पराग करुणा करौ (जे) नेता नवधा भगति के॥ १०॥ (१४/२१३)

"दीपति"=दीप्ति; प्रकाश। वन्दन=नमस्कार; अभिवादन। "नेता" के स्थान में, पाठान्तर नियन्ता भी है। "नेता"=प्रवर्तक प्राप्तकराने वाले। "सुफलक सुवन;=अक्रूर जी। ब्यास सावक=व्यासजी के पुत्र परम हंस श्री शुक देव जी। पृष्ट १७ का श्लोक देखिये॥

[श्लोक] ·

श्रीकृष्ण श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकी कीर्त्तने,
प्रह्लादः स्मरणेऽङ्घ्रि पद्मभजने लक्ष्मीः, पृथुः पूजने ।
अक्रूरस्त्वभिवादने कपिपतिर्दास्ये च, सख्येऽर्जुनः, सर्व
स्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कैवल्यमेते विदुः ॥ १ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

जो जो महानुभाव नवधा भक्ति के प्राप्त कराने वाले आचार्य्यरूप हो, सो आप सब मुझपर करुणा करके, अपने पद पंकजों की धूरी मुझ को दीजिए ।

(१) श्रवण भक्ति निष्ठ मतिमान श्री परीक्षित जी;

(२) कीर्त्तन भक्ति निष्ठ वैयासकी महासुमति परम हंस श्री शुक जी;

(३) सुन्दर स्मरण भक्ति निष्ठ श्री प्रह्लाद जी;

(४) भगवत चरण सेवन भक्ति निष्ठा मानस वती महारानी कमला श्री लक्ष्मी जी;

(५) अर्चन पूजन भक्ति निष्ठ श्री पृथु जी;

(६) बन्दन भक्ति निष्ठ श्री अक्रूर जी;

(७) श्री सीतापति दास्य भक्ति निष्ठा दीप्ति युक्त कपीन्द्र श्री हनुमान जी ।

(८) सख्य भक्ति निष्ठ प्रथा पुत्र श्री अर्जुन जी;

(९) आत्म निवेदन भक्ति निष्ठाधारी श्री बलि जी;

ये श्रवणादिक नवो नाम वाली भक्तियां ही जिनकी प्राणाधार जीविका हैं, सो नवो महा भागवत, सब गति मति हीन जनों के रक्षक हैं ॥

स्वामी श्री ६ राम रसरंगमणि जी का छप्पय, कि जिन से इस दीन ने भक्तमाल पढ़ी है।

(छ०) नवधा भक्ति निधान ये, राम प्राण प्रिय भक्त दश ॥ श्रवण समीरकुमार, कीरतन कुश लव निर्भर। शुचि सुमिरन रत भरत, चरण सेवन अङ्गद कर ॥ पूजन शवरी, शुभ सुमन्त्र बन्दन अधिकारी। लखन दास्य, सुग्रीव सख्य सुख लूट्यो भारी। आत्म समर्पण गीधपति, रसरङ्ग मणी करि लिये यश। नवधा भक्ति निधान ये राम प्राणप्रिय भक्त दश ॥

श्री परीक्षित जी।

(१११/८४२) टीका। कवित्त।

श्रवणरसिक कहूं सुने न परीक्षित से, पान हूं करत लागी कोटि गुण प्यास है। मुनि मन मांझ क्योहूं आवत न ध्यावत हूं वहीं गर्भ मध्य देखि आयो रूप रास है ॥ कही शुकदेव जू सों टेव मेरी लीजै जानि, प्रानलागे कथा, नहीं तक्षक को त्रास है। कीजिये परिक्षा उर आनी मति सानी अहो! बानी विरमानी जहां जीवन निरास है ॥ ९७ ॥ (६२९–५३२)

"टेव"=बान, प्रकृति, स्वभाव। "विरमानी"=ठहर गई, रुकी।

वार्त्तिक तिलक।

राजा परीक्षित के समान भगवतकथा श्रवण रसिक कहीं सुनने में नहीं आता। श्रवण पुटन से हरि

कथा सुधा पान करते हुए भी प्यास कोटि गुनी बढ़ती ही जाती थी । ऐसा क्यों न हो ? देखिये जो प्रभु मुनियों के ध्यान करने से भी उनके मन में किसी प्रकार से नहीं आते, उन्हीं रूपरास भगवान को गर्भ के मध्य में आप दर्शन कर आए हैं । श्री भागवत सुनते समय श्री शुक जी से कहा कि "मेरी प्रकृति जान लीजिये कि प्रभु की कथा ही में मेरे प्राण लगे हैं । मुझ को तक्षक का कुछ भय नहीं है । चाहे आप मेरी परीक्षा ले लीजिये;" यह सुन श्री शुकदेव जी अपने हृदय में यह बात लाए कि राजा सत्य कहते हैं कथा में इनकी मति सनि गई है ।

अहो ! श्री परीक्षित जी की क्या प्रशंसा की जावे कि ज्योंही श्री शुकदेव जी की वाणी समाप्त हुई, उसी क्षण शरीर को त्याग दिया परमधाम चले गए ॥

श्री परीक्षित जी की कथा पृष्ठ १९९ में भी लिखी जा चुकी है कि ("जिनके हरि नित उर बसैं") ॥

परम हंस श्री शुकदेव जी ।

(१९१२) टीका । कवित्त ।

गर्भ ते निकसि चले बनही में कीयो वास, व्यास से पिता को नहिं उत्तरहु दियो है । दशम श्लोक सुनि गुनि मति हरि गई, लई नई रीति, पढ़ि भागवत लियो है ॥ रूप गुन भरि सद्योजात कैसे करि; आए सभानृप

ढरि भीज्यो प्रेम रस हियो है। पूछे भक्त भूप ठौरठौर परें भौंर, जाई, गाई उठे जबे मानो रंगभर कियो है ॥ ९८ (६२९—५३१)

ढरि''=चलिके, ढरक के, कृपा करके।

वार्त्तिक तिलक।

परम हंस श्री शुकदेव जी की कथा (पृष्ठ ५ तथा ९२ में) यहां तक तो लिखी जाचुकी है कि शुक का बच्चा श्री व्यास जी की स्त्री के मुख द्वारा उदर में प्रवेश कर गया। बारह बर्ष उनके उदर में ही आप रहे। पुनः देवतों मुनीश्वरों की प्रार्थना से आप गर्भ से निकल के उसी क्षण चल दिये और जाके बन ही में बसे। महर्षि श्री व्यास जी सरीखे पिता को (पृष्ठ ५) "पुत्र! पुत्र!!" पुकारने पर स्वयं उत्तर तक न दिया, किन्तु वृक्षों से ही कहला के प्रबोध कर दिया।

तब श्री व्यास जी ने एक अनुरागका जाल फेंका अर्थात् भगवद्यश के श्लोक सिखाकर लड़कों को (श्री अगस्त्य जी के शिष्यों को) बन में आपकी ओर भेजा। किसी दिन एकलड़के को अपूर्व भगवद्यश का एक* श्लोक भागवत के तृतीयस्कन्ध का गाते सुनके आप की मति हर गई। भगवत प्रेम में आप ऐसे पगे कि उस लड़के से पता पूछकर श्रीव्यास जी के पास आकर

* अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

नवीन रीति ग्रहण कर (अर्थात् जिनने उत्तर भी न दिया था सो) अब पास में रह के श्रीमद्भागवत को पढ़ा॥

तब संपूर्ण श्री भागवत में जो श्री भगवत रूप और गुणों का वर्णन था, सो सब इनके मन में भरके उसके आनन्द का भार इतना हो गया कि जो किसी प्रकार से सहा नहीं जाता था।

एवं, जब ऋषिपुत्र के शाप से राजा परीक्षित जी राज तज के श्रीगंगा कूल में मुनियों के वृन्द समेत सभा में बैठे, और भक्त राजा जी ठौर ठौर के मुनीश्वरों से अपनी सुगति का उपाय पूछ रहे थे; मुनीश्वर लोग इस विचार के चक्कर (भंवर) में पड़े थे कि राजा को क्या उपदेश देना चाहिये।

उसी क्षण उस सभा में, श्री परीक्षित जी के भाग्य बश, श्री शुकदेव जी, कि जिन का हृदय श्री भगवत प्रेमरस से भीगा हुआ है, सो परोपकारता की ढरन से ढरके, आ पहुंचे और राजा से कहा कि तुम भगवत यश सुनो। यह कह श्री "भागवत" कथा गा चले, मानो प्रेमरंग की झड़ी सी लगा दी। श्री भागवत, श्री परीक्षित महाराज को श्री शुकजी ने ऐसा सुनाया कि सातही दिन में महाराज ने परम पद ही पालिया॥

श्रीव्यास जी तथा सुरगुरु श्री बृहस्पति जी की आज्ञा से श्रीशुकजीने, विज्ञान सिन्धु श्री जनक जी महाराज से उपदेश लिया।

एक समय किसी तीर्थ पर देवाङ्गनाएं वस्त्र रहित

स्नान कर रही थीं परमहंस श्री शुकदेव जी अकस्मात उधरही से जा निकले, उन देवियों ने आप से तो लज्जा न की, परन्तु व्यास जी को देखतेही शीघ्रता एवं लज्जा पूर्बक वस्त्र धारण करने लगीं। और, व्यास जी की शंका का उत्तर उन बड़भागियों ने यह दिया कि "प्रभो! आप से अथवा सब से लज्जा तो सामान्यतः अवश्य है ही, रही वार्त्ता यह कि परमहंस श्रीशुकदेव जी से लज्जित क्यों न हुईं? सो उनको तो स्त्री पुरुष का भेदही नहीं, वे तो सब को भगवत्मयही देखते हैं; उनको इतनी भी सुधि नहीं कि हम को लज्जा आई वा नहीं, सवस्त्र हैं वा नग्न, वे तो भगवद्रूप में छके केवल उसी में मग्न हैं॥"

श्री प्रह्लाद जी।

(११३) टीका। कवित्त।

सुमिरन सांचो कियो, लियो देखि सबहीं में एक भगवान कैसे काटै तरवार है। काटिबो खड़ग जलबोरिबो सकति जाकी, ताहि को निहारै चहुंओर सो अपार है॥ पूछेते बतायो खंभ, तहांही दिखायो रूप, प्रगट अनूप भक्त बाणीहीं सो प्यार है। दुष्ट डार्यो मारि, गरे आंतैंलई डारि; तऊ क्रोध को न पार, कहा कियो यों बिचार है॥ ९९॥ (६२९-५३०) "सकति"=शक्ति।

"आगेहु रामहि, पीछेहु रामहि, व्यापक रामहि हैं बन ग्रामे"।
"सुन्दर राम दशोदिशि पूरण स्वर्गहु राम पतालहु रामै"॥

वार्तिक तिलक।

महाभागवताग्रगण्य श्री प्रह्लाद जी की कथा "द्वादश भक्त राजों" के साथ पृष्ठ ८६। ८९ में लिखीजा चुकीहै। इन्ने श्री राम नाम का सच्चा स्मरण किया; जिस स्मरण से इनको पूर्ण परब्रह्म दृष्टि प्राप्त हुई। कि जिस दृष्टि से चराचर में एक भगवान् ही को देखा। यह भजन और स्मरण देखके भक्त द्रोही हिरण्यकशिपु ने इनके बध के अनेक प्रयत्न किये; अग्नि में जलाया, जल में डुवाया, तथा खड्ग का प्रहार भी कराया; परन्तु इन को खड्ग कैसे काट सकता था। क्योंकि खड्ग में काटने की शक्ति अग्नि में जलाने की एवं जल में डुबाने की शक्ति जिस परमात्मा श्री राम जी की है, उन्ही को आपचारो ओर अग्नि जल खड्गादिकों में अपार प्रीति प्रतीत से देखते थे।

अन्त में हिरण्यकशिपु ने पूछा कि "तेरा राम कहां है?" तो आपने उत्तर दिया कि "प्रभु सर्वत्र हैं, (दो०) तोमें, मोमें खड़ग में, खम्भहु में हैं राम। मोहि दीखैं, तोहि नाहिँ, पितु! बिना जपे हरि नाम॥"

ऐसा सुन दुष्ट ने पुनः पूछा कि "क्या इस खंभे में भी है?" आपने उत्तर दिया कि "हां, निस्सन्देह हैं" तिस्पर, उसने महा क्रोध करके उस खंभे में एक घूसा (मुष्टिक) मारा।

तब अपने भक्त की प्रियवाणी को सत्य करने वाले

प्रभु, उसके मुष्टि मारतेही, उस खंभे में से महा अट्टहास शब्द करके अद्भुत रूप से (अर्थात् आधा "नर" का और आधा "सिंह" का शरीर धारण कर) प्रगट हो उस दुष्ट को मार डाला। फिर उसकी आँतें निकाल के अपने गले में डाल लीं; पर इतने पर भी आप का अपार क्रोध बनाही रहा, शान्त नही हुवा, न जानें मन में क्या विचार आ गया॥

(१३४/८४२) टीका। कवित्त।

डरे शिव अज आदि, देख्यो नहीं क्रोध ऐसो, आवत न ढिग कोऊ लछिमीहूं त्रास है। तब तो पठायो प्रह्लाद अहलाद महा, अहो भक्ति भाव पग्यो आयो प्रभु पास है। गोदमें उठाइलियो, शीसपर हाथ दियो, हियो हुलसायो, कही वाणी विनयरास है। आई जगदया लगि पस्यो श्री नृसिंह जू को, अस्यो यों छुटावो, कस्यो माया ज्ञान नास है॥ १००॥ (६२९—५२९)

"ढिग"=समीप, पास, लगे। "अस्यो"=हठ पड़े, अड़ गए। "लगिपस्यो"=मुंह लगू हुए, लट्टू हुए, अरुझि पस्यो, उलझ पड़े,।

वार्त्तिक तिलक।

श्री नरहरि भगवान् का वह क्रोध देख के, औरों की तो बात ही क्या है श्री ब्रह्माशिवादिकभी डर गए क्योंकि इन्होंने प्रभु का ऐसा क्रोध कदापि देखाही न था। कोई समीप नहीं जा सकते थे, वरंच श्री लक्ष्मी जी भी भय से प्रभु के पास नहीं जा सकीं।

तब तो श्री ब्रह्मादिक ने श्री प्रह्लाद जी से कहा कि "वत्स! तुम प्रभु के पास जाके क्रोध की शान्ति करावो" यह सुन आश्चर्य भक्ति भाव के महान आह्लाद में पगे हुए श्री प्रह्लाद जी श्री प्रभु के पास बे खटके गये।

श्री भक्तवत्सल जी ने प्रसन्न हो दोनों हाथों से उठ के आप को गोद में बिठला लिया, और मस्तक आघ्राण कर सीस पर अखण्ड अभयप्रद हस्त फेरा।

तदनन्तर, श्री प्रह्लाद जी का हृदय अकथनीय आनंद से हुलास को प्राप्त हुआ; और प्रेमराशिसानी बाणी से स्तुति प्रार्थना करने लगे। प्रभु ने आज्ञा की कि "वत्स! कुछ बर मांग"॥

आप बोले कि प्रभो! मैं वरदान नहीं चाहता हूं।

परन्तु पुनः आज्ञा पाय आप को जगत के जीवों पर दया आ गई; इससे चरणों में लग के और हठ करके यही बर मांगा कि नाथ! इस आप की माया ने सब जीवों का ज्ञान हर लिया है इसलिये अपनी माया से जीवों को छुड़ाइये, जिसमें आप का भजन करें॥

(सवैया)

राम सुनाम बिना, रसरंग मनी, मुख जानि लजौं मैं लजौं रे। चातक ज्योंघन, रंक भजै धन, त्यों प्रभु राम भजौं मैं भजौं रे॥ काक कुसंगति छोड़ि सुसंगति हंस सुबेष सजौं मैं सजौं रे। जानकीजीवन राम को नाम कभूं न तजौं न तजौं न तजौं रे॥१॥

काढ़ि कृपान कृपा न कहूं पितु कालकराल बिलोकि न भागे। "राम कहां?" "सब ठाउँ हैं" "खंभ में"? "हां" सुनिहाँक नृकेहरि जागे॥ बैरी बिदारि भए बिकराल, कहे प्रहलाद हि के अनुरागे। प्रीति प्रतीति बढ़ी, तुलसी, तबते सब पाहन पूजन लागे॥२॥

(दो०) नाम नोद भजि, वाद तजि, चखि सुप्रेम रस स्वाद।
धन्य धन्य, रस रङ्गमणि, राम भक्त प्रह्लाद॥

महाबीर श्रीहनुमान जी।

(ओं नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय)

"श्रीहरिवल्लभों" (पृष्ठ १०३–१०७) में भी, परम प्रिय श्रीबीरमारुति जी की कथा कही जा चुकी है; फिर यहां "नवधा भक्ति" की निष्ठा में आप का यश श्रीग्रन्थकर्त्ता ने गाया है; और पुनः आगे, १६ वें छप्पै (मूल २०) में भी, "श्रीरघुबीर सहचर" महाबीर पवनात्मज जी का सुयश देखिये॥ उसी प्रसंग में आप के जन्म की कथा भी पढ़के परमानन्द लाभ कीजिये॥

(चौ०) "सुमिरि" पवन सुत पावन नामू। अपने बश करि राखे रामू॥ और, आपकी "श्रवण" निष्ठभक्ति इस वार्त्ता से प्रसिद्ध ही है कि जब श्री अवधेश राघवेन्द्र जी महाराज निज साकेत धाम को जाने लगे, आप को आज्ञा दी कि "तात! तुम यहीं रहो"; तिस्पर आपने कहा कि "प्रभो! जो आज्ञा, परन्तु यह बर-

दान मिले कि कदापि किसी काल में श्रीरामायण मुझे सुनानेवालों का अभाव नहीं हो।" प्रभु बोले कि "अच्छा, ऐसाही होगा, सदैव मेरी कथा तुम्हारे श्रवण गोचर होती रहेगी; नर नाग गन्धर्व सुर, मेरे यश तुम प्रति गायाही करेंगे, तथा भाग्यशालिनि अप्सराएं निरन्तर मेरे चरित्र तुम्हें सुनातीही रहेंगी॥" निदान, आप किस रस के आचार्य्य नहीं हैं? सब ही के हैं॥

(चौ०) दुर्गम काज जगत में जेते। सुगम अनुग्रह कपि के तेते॥ सीयदुलारे रामपियारे। सन्त भक्त के कपि रखवारे॥ नहिँ कोउ हनुमत सम बड़भागी। सीताराम चरण अनुरागी॥ मंगल मूरति मारुतनन्दन सकल अमंगल मूल निकन्दन॥

(सो०) सेइय श्रीहनुमान, भुक्ति-मुक्ति-हरिभक्ति-प्रद।
जनरक्षक, भगवान, बीर, धीर, करुणायसन॥

श्रीअर्जुनजी; श्रीपृथुजी।

"हरि बल्लभों" (पृष्ठ १७८) में भी, श्रीअर्जुन जी की कथा हो चुकी है; और यहां (इस छप्पय में) आपको श्रीग्रन्थकारस्वामीने "नवधा भक्ति" (सख्यरस) के प्रसंग में लिखा है॥ (श्लोक) "सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ &c. &c. प्रियोऽसि मे॥"

(२) भगवत के अवतारों (पृष्ठ ६१) में तथा "जिनके

हरि नित उर बसैं" तिन भाग्यभाजनों (पृष्ठ १९९) में भी महाराज श्रीपृथु जी की चर्चा हो चुकी है। किसी २ महात्मा ने आपको "श्रवण" निष्ठा में लिखा है; और यहां आपको श्रीनाभास्वामी जी, प्रमुख, ने "पूजन" निष्ठा में वर्णन किया है।

☞ पृष्ठ २१५ में जिस "नहुष" की वार्त्ता लिखी गई है, सो 'चन्द्रवंशी नहुष' जानिये। सूर्य्यवंशी नहीं॥

पृष्ठ २९१ की १९ (उन्नीस्वीं) पंक्ति में,—तथा कई श्लोक दशमस्कन्ध के,—इतने शब्द और वहां चाहिये जो रहगए हैं।

श्री अक्रूर जी।

(१५५/२४३) टीका। कवित्त।

चले अकरूर मधुपुरीतें, विसूर, नैन चली जल धारा, कबदेखौं छवि पूर को। सगुन मनावै, एक देखिबोई भावै, देहसुधि विसरावै, लोटै, लखि पगधूर को। बंदन प्रबीन, चाह निपट नबीन भई, दई शुकदेव कहि जीवन की मूर को। मिले राम कृष्ण, झिले, पाईकै मनोरथ को हिले दृगरूप कियो हियो चूर चूर को॥१०१॥(६२९-५२८)

"विसूरना"=रूप चिन्तवन करना। "झिले"=आगे बढ़े, लपके। "हिले"=प्रवेश किया; हिल गए, हिताए, परके, सस्नेह मिले।

वार्त्तिक तिलक।

श्री अक्रूर जी कंस के भेजे हुए मथुरा जी से (श्री

ब्रज की ओर) अति बिरह उतकरठा से चले, यों विचारते हुए कि (पद) जे पद पदुम सदा शिव के रह, सिन्धुसुता उरते नहिं टारे । सूरदास तेई पद पंकज, त्रिबिध ताप दुख हरन हमारे । (दो०) ब्रज बाला जे पद कमल, रहीं सदा उर लाइ । तेइ पद पंकज देखिहौं, हौं इन्ह नैनन्ह जाइ ॥ श्रीकृष्ण बलदेव जी का रूप चिन्तवन करतेही आंखों से प्रेम जल की धारा बहने लगी; और श्याम गौर छविपूर्ण दोनों भाइयों के दर्शन का मनोरथ भी हृदय में भर आया । सगुन मनाते जाते थे; केवल दर्शन ही सुहाता था, इससे अपने शरीर का भान भूल जाया करते थे।

इसी दशा से जब श्रीब्रज के समीप पहुंचे, तो मार्ग की धूरि में "कमल बज्र ध्वज अंकुशादि चिन्ह" युक्त भगवत के चरण उबटे हुए देखके उनको दण्डवत कर आप उन्हीं चरण चिन्हों में लोटने लगे और इन्हें प्रीति चाह अतिशय नवीन उत्पन्न हुई इसी से इनकी "जीवन की जड़ी बन्दन भक्ति प्रवीणता" श्रीशुकदेव जी ने श्री भागवत में भली भाँति कही है ।

श्री वृन्दाबन में आप आो पहुंचे; श्री बलराम जी तथा श्री कृष्ण जी का दर्शन कर, अपना मनोरथ पूर्ण देखा आगे बढ़, जा मिले; छवि सागर में इनके नेत्र मग्न हो गए और हृदय प्रेम से चूर चूर हो गया ॥

प्रेम पूरित अन्तःकरण से शुभमार्ग में जिनका चि-

न्तवन करते चले आते थे, यहां आकर, उनके और विचित्र चरित्रों के अतिरिक्त, यह भी देखा कि (स०) "सुत-दारा औ गेहकी नेह सबै तजि जाहि विरागी निरन्तर ध्यावैं। यम नेम औ धारणा आसन आदि करें नित योगी समाधि लगावैं॥ जेहि ज्ञान औ ध्यान तें जानै कोऊ सो अनादि अनन्त अखण्ड बतावैं। ताहि हि गोप की छोहरियां छँछिया भर छाँछ पै नांच नचावैं॥" जिससे आप असीम सुख को प्राप्त हुए।

श्री अक्रूर जी की चरचा श्री "हरि वल्लभों" (पृष्ठ १७०) में भी हो आई है और यहां "नवधा भक्ति" के प्रसंग में॥

——:o:——

श्री बलि जी।

($\frac{११६}{८४३}$) टीका। कवित्त।

दियो सरबसु, करि अति अनुराग बलि, पागिगयो हियो प्रहलाद सुधि आई है। गुरु भरमावै, नीति कहि समुझावै, बोल उर में न आवै केती भीति उपजाई है। कह्यो जोई कियो सांचो भाव पनलियो, अहो! दियो डर हरिहूंने, मति न चलाई है। रीझे प्रभु, रहेद्वार, भये बश-हरि मानी, श्रीशुक बखानी, प्रीति रीति सोई गाई है॥१०२॥ (६२९—५२७)

भरमावै=घुमावे फिरावे, इधर उधर करे, बहकावे, टाल मटाल करे, हेर फेर करे। "चलाई"=चली, टकसी, हटी, डोली॥

वार्तिक तिलक ।

श्री बलि जी ने अति अनुराग पूर्वक श्री वामन भगवान् को अपना सर्वस्व दे डाला; यद्यपि इनके गुरु शुक्राचार्य्य ने इनको बहुत भरमाया; और यह भी जता दिया कि ये देवतों के पक्षपाती विष्णु हैं; तथापि इनने न माना, वरंच इनको अपने पितामह श्री प्रह्लाद जी की प्रेमा भक्ति की सुधि आ गई। इससे श्री बलि जी का हृदय प्रभु के अनुराग में पग गया।

(वि०प०)"जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही। तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी। बलि गुरु तजेउ, कन्त ब्रजबनितनि, भयो मुदमंगलकारी। नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहांलों। अंजन कहा? आंखि जो फूटै, बहुतक कहौं कहांलौं। तुलसी, सो सब भांति परमहित पूज्य प्राणते प्यारो। जाते होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥"

पुनः शुक्राचार्य्य ने बहुत प्रकार से राजनीति समझाई तथा अनेक भय भी दिखाए परन्तु शुक्र का बचन आप के मन में एक भी न जमा; किन्तु जो कुछ प्रभु से प्रतिज्ञा की थी, सोई बात की। सच्चे भाव से अपना दृढ़ प्रण (पन) गहे ही रहे।

श्री हरि ने भी बहुत डराया, पर इनने अपनी मति

हरिकृपासे स्थिर ही रक्खी; अर्थात् अपना देह आत्मा सब प्रभु को समर्पण कर दिया।

छन्दइन्दव ।

"कै यह देह सदासुख सम्पति कै यह देह बिपत्ति परोजू । कै यह देह निरोगरहो नित कै यह देहहि रोग चरोजू । कै यह देह हुताशन पैठहु कै यह देह हिमालै गरोजू। सुन्दर रामहिं सौंपिदियो जब, तब यह देह जियो कि मरोजू" ॥

प्रभु इनकी सत्यसन्धता तथा आत्म निवेदन भक्ति देख, अत्यन्त ही रीझ, इनके द्वारपाल बन के सदा द्वार पर ही रहने लगे और अपने मन में हार मान, आप के बश ही हो गए। सो परम हंस श्रीशुक जी ने श्री भागवत में अच्छे प्रकार से बखान किया है। सोई श्री बलि प्रीति रीति हमने भी गान की है।

श्री बलिजी की कथा "द्वादश भक्तों" (पृष्ठ ९१) में भी लिखी जा चुकी है और यहां "आत्म समर्पण" में॥

(११७/८४२) छप्पै ।

हरिप्रसाद रस स्वाद के भक्त इते परमान ॥ शङ्कर[१], शुक[२], सनकादि[३], कपिल[४] नारद[५], हनुमाना[६] । विष्वकसेन[७], प्रह्लाद[८], बलि[९], भीषम[१०], जग जाना । अर्जुन[११], ध्रुव[१२], अम्बरीष[१३], विभीषण[१४],

महिमा भारी। अनुरागी अक्रूर[१५], सदा उद्धव[१६], अधिकारी। भगवन्त भुक्त अवशिष्ट की कीरति कहन सुजान। हरिप्रसाद रस स्वाद के भक्त इते परमान ॥११॥ (१५/२११)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीहरि के प्रसाद के रसस्वाद लेनेवाले, और श्रीभगवत के भोजन किये हुए शेष अमृतान्न की कीर्त्ति महिमा कहने में परम सुजान, इतने भक्त प्रमाण हैं—श्रीशङ्कर जी श्री शुक जी सनकादिक चारो भाई श्री कपिल जी श्रीनारद जी श्रीरामानन्य हनुमान जी श्री विष्वक्सेन जी, श्री प्रह्लाद जी श्री बलि जी, और प्रसिद्ध देवव्रत श्री भीष्म जी, श्री अर्जुन जी श्री ध्रुव जी श्री अम्बरीष जी, महा महिमायुक्त श्री विभीषण जी, अनुरागी श्री अक्रूर जी, सदा प्रेमाधिकारी श्री उद्धव जी ।

☞ तात्पर्य्य यह है कि भगवत का उच्छिष्ट प्रसाद इन भक्तों को अर्पण करना चाहिये, उसमें प्रमाण पद्मपुराण का (श्लोक) "बलि र्विभीषणो भीष्मः कपिलो नारदोऽर्जुनः। प्रह्लादो जनको व्यासो अम्बरीषः पृथुस्तथा ॥१॥ विष्वक्सेनो ध्रुवोऽक्रूरो सनकाद्याः शुकादयः। वासुदेव प्रसादान्नं सर्वे गृह्णन्तु वैष्णवाः ॥ २ ॥

१ श्री शिव जी, पृष्ठ* ८१	३ श्री सनकादि जी, ८५
२ श्री शुकदेव जी, पृष्ठ ९२	४ श्री कपिलदेव जी, पृष्ठ ८६

५ श्री नारद जी पृष्ट ८१	११ श्री अर्जुन जी, पृष्ठ १७८
६ श्री हनुमानजी, पृष्ट १०३	१२ श्री ध्रुव जी, पृष्ठ १७४
७ श्री विष्वकसेन जी, ९७	१३ श्री अम्बरीष जी, १२६
८ श्री प्रह्लाद जी, पृष्ट ८६	१४ श्री विभीषण जी, १०८
९ श्री बलि जी, पृष्ठ ९१	१५ श्री अक्रूर जी, पृष्ठ १७०
१० श्री भीष्म जी, पृष्ठ ९०	१६ श्री उद्धव जी, पृष्ट १७२

☞ जिस जिस पृष्ट में जिन जिन भक्तों की चर्चा हो आई है, उस पृष्ट के अंक ऊपर उनके नाम के सामने, लिखे गए हैं।

(११८/८४२) छप्पै।

ध्यान चतुर्भुज चित धर्‌यौ, तिन्हैं शरण हौं अनुसरौं। अगस्त्य पुलस्त्य पुलह च्यवन वशिष्ठ सौभरि ऋषि। कर्द्दम अत्रि रिचीक गर्ग गौतम सुव्यासशिषि॥ लोमश भृगु दालभ्य अङ्गिराशङ्गि प्रकाशी। मांडव्य विश्वामित्र दुर्वासा, सहस अठासी॥ जाबालि यमदग्नि मायादर्श कश्यप परवत पराशर पद रज धरौं। ध्यान चतुर्भुज चित धर्‌यौ, तिन्हैं शरण हौं अनुसरौं॥१२॥ (१६/२१६)

वार्त्तिक तिलक।

श्री भगवान के चतुर्भुज रूप का ध्यान जिन भक्त ऋषियों ने अपने चित्त में धारण किया, मैं उनके

शरण में प्राप्त हूं और उन्ही के चरणों की धूरि अपने सीस में धरता हूं—

१ श्री अगस्त्य जी	१५ श्री दालभ्य जी
२ श्री पुलस्त्य जी	१६ श्री अङ्गिरा जी
३ श्री पुलह जी	१७ श्री ऋष्यशृङ्ग जी
४ श्रीच्यवन जी	१८ श्री मांडव्य जी
५ श्री वशिष्ठ जी	१९ श्री विश्वामित्र जी
६ श्री सौभरी जी	२० श्री दुर्वासा जी
७ श्री कर्द्दम जी	२१ श्री जाबाली जी
८ श्री अत्रि जी	२२ श्री यमदग्नि जी
९ श्री ऋचीक जी	२३ श्री मायादर्श (मारकण्डेय) जी
१० श्री गर्ग जी	२४ श्री कश्यप जी
११ श्री गौतम जी	२५ श्री पर्वत जी
१२श्री(संजयजी)व्यासशिष्य	२६ श्री पराशर जी
१३ श्री लोमश जी	(२७)अठासी सहस्र (८८०००)
१४ श्री भृगु जी	

श्रीअगस्त्य जी।

श्री सीतारामकृपापात्र शिरोमणि ऋषीश्वर श्री१०८ अगस्त्य भगवान् को, कि जिनका दूसरा नाम "श्री घटयोनि वा कुम्भज जी" भी है, अन्य महर्षियों के ही सरिस नहीं, बरंच इनको श्री प्रभु का दूसरा व्यक्ति ही समझना चाहिये; किमधिकम्? एवं, आप की

सखी "श्री लोपामुद्रा जी", श्रीजनकनन्दिनी जी की अतिशय कृपापात्र सखी हैं। आप दोनों की जय।

श्रीअगस्त भगवान् की उत्पत्ति घड़े से हुई; वरुण देवता तथा मित्र जी दोनों के तेज एक कलश में रक्खे हुए थे, श्रीब्रह्मा जी की इच्छा से उसी घट से आप निकले। और ऐसा भी कहा है कि एक राजा ने पुत्र-काम यज्ञ कराया; उस से जो क्षीरान्न मिला, उसको उसने एक कलश में रख दिया (वह अपनी रानी को न खिला सका); उसी घड़े से आप प्रगट हुए।

आप की बनाई "श्री अगस्त संहिता" प्रसिद्ध ही है।

साकेतपति शार्ङ्गधर दिव्य अखण्डैक नित्यकिशोर मूर्त्ति व्यापक परात्पर भगवत सच्चिदानन्द घन शोभाधाम श्रीजानकीवल्लभरामचन्द्र जी की उपासना पूजा इत्यादि के बड़े भारी आचार्य्य श्रीअगस्त भगवान् हैं। आपने सर्व जगत पर कैसी कृपा की बरषा की है, वर्णन नहीं हो सकता।

पांच छः कारणों से एक समय आप सम्पूर्ण विशाल समुद्र ही को पान कर गए थे; सो कथा विख्यात है ही। (चौ०) कहँ कुम्भज, कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ विदित सकल संसारा॥

आज भी आप का नामही लेते महा अजीर्ण कोसों भागता है।

श्रीपार्वती जी और महादेव जी के बियाह उत्सव में

जब गिरिराज हिमाद्री के हाँ देवतों दानवों आदिक के इकट्ठे होने पर उनके बोझ से धरती उत्तर की ओर नीची हो गई, तो सब की प्रार्थना से परम समर्थ श्रीअगस्ति जी दक्षिण को चले गए; तब आप ही के प्रभाव से पृथ्वी दक्षिण की ओर नीची हो गई॥

अन्न दान न करके केवल मणि सुवर्ण वसन भूषणादि दान करने पर भी एक व्यक्ति बड़ी दुर्गति को प्राप्त हुआ था; सो उस्का उद्धार महामुनि श्रीअगस्ति जी ही महाराज ने कराया। और उस्के दिये भूषणों से आपने श्री प्रभु की पूजा की। श्री सीताराम नाम का माहात्म्य, श्रीअगस्त्त जी ने कहा भी है और श्री शेष जी की सभा में देवतों तथा मुनियों को आपने नामप्रभाव दिखा भी दिया है॥

देवतों की प्रार्थना पर श्रीअगस्त्त भगवान् ने ही मन्दराचल (विन्ध्यगिरि) को आज्ञा दी जिस्के अनुसार वह अचल आज तक वैसा ही पड़ा का पड़ा ही है जैसा आप को साष्टाङ्ग दण्डवत करने के समय गिरा था।

श्री हनुमान जी, श्रीशिव जी, और श्रीब्रह्मा जी, जिस प्रकार से श्रीअगस्त्त जी महाराज की महिमा जान्ते हैं, वैसी और कोई क्या जानेगा? आप के शिष्य श्रीसुतीक्ष्णादि की ही भक्ति प्रीति की व्याख्या तो अपार है फिर स्वयं आप की तो वार्त्ताही क्या?

लंका में, सर्कार पर कृपा करके राक्षस प्रेरित अस्त्र शस्त्रों से रक्षा की है; और श्री आदित्य हृदय पढ़ाया है कि जिसकी महिमा प्रसिद्ध ही है।

(चौ०) दीन दयाल दिवाकर देवा। कर मुनिमनुज सुरासुर सेवा ॥ हिम तम करि केहरि करमाली। दहन दोष दुख दुरित रुजाली ॥ कोक कोकनद लोक प्रकाशी। तेजप्रताप रूप रस राशी ॥ सारथि पंगु दिव्य रथ गामी। विधिशंकर हरि मूरति स्वामी ॥ बेदपुराण प्रगट यश जागै। तुलसी राम भक्ति वर मांगै ॥

अरण्य में, प्रभु ने स्वयं आप के आश्रम में जाके आप को दर्शन दिया है।

श्री अयोध्या जी में राज्याभिषेक के अनन्तर श्री-अगस्त जी से प्रभु ने अनेक कथा, तथा श्रीमहाबीर हनुमान जी के सुयश सुने हैं।

श्रीअगस्त्य गुण ग्राम, वेद तथा पुराणों में विदित है। श्रीसीताराम जी की पूजा भक्ति के आचार्य महा-मुनि अगस्त्य भगवान् की जय जय ॥

[सवैया] पूरण ब्रह्म बताय दियो जिन एक अखंड है ब्यापकसारे। रागरुद्वेष करै अब कौन सो जोई है मूल सोई सबडारे ॥ संशय शोक मिट्यो मनको सब-तत्त्व बिचारि कह्यो निरधारे। "सुन्दर" शुद्धकिये मल-धोयकै है गुरुको उर ध्यान हमारे ॥

श्री पुलस्त जी

श्रीपुलस्तजी, श्रीब्रह्मा जी के पुत्र हैं। गृहस्थाश्रममें रह, पुत्र उत्पादन कर, बेटों को विद्या पढ़ा, आपने मोक्षपद का साधन किया॥

श्रीपुलहजी।

श्रीपुलह जी श्रीपुलस्त जी के भाई हैं। इन ने भी अपने भ्राता ही के सरिस आचरण किये॥

श्रीच्यवन जी।

श्रीच्यवन जी, बन में रह, भगवान के ध्यान समाधि में ऐसे निमग्न हो गए कि उनके शरीर भर में दीमकों ने मिट्टी का ढेर (बालमीक) लगा दिया।

उसी बन में राजा शर्याति आखेट को गया। उसकी कन्या तथा कुछ सेना भी साथ थी। उस कन्या ने उसी मिट्टी के ढेर (बलमीक) में कुछ चमकती सी वस्तु देख के कौतुक बश उसमें लकड़ी खोद दी। उसमें से रुधिर निकल आया। लड़की बहुत डरी और चुपचाप अपनी सेना में भाग आई।

मुनि के उद्वेग पाने से, राजा तथा उसके सब साथियों का अपान वायु रुक गया। इस प्रकार से सबको अतिकष्ट होने के कारण को, बुद्धिमान राजा

ने यह ठीक ठीक अनुमान कर लिया कि "किसी ने यहां के किसी तपस्वी का कोई अपराध अवश्य किया है; तब राजा इसकी पूछ जांच करने लगा।

राजकन्या ने विनय किया कि "पिता जी! मुझ बालिका की अज्ञता से एक तपस्वी के नेत्रों में लकड़ी चुभ गई है। मुझे उसका बड़ा ही पश्चाताप तथा भय है।"

श्रीमुनि जी की सेवा में [उस कन्या को साथ लिये] जाके, नृपति ने, स्तुति प्रार्थना की। मुनि प्रसन्न हुए। श्रीराम कृपा से सब का कष्ट जाता रहा।

राजा, मुनि महाराज को वह कन्या दान कर, अपनी राजधानी श्री अयोध्या जी में लौट आए।

स्वपत्नी के तोषार्थ, श्रीच्यवन ऋषी जी हरि-कृपा से अश्वनी कुमार की सहायता से युवा अवस्था को प्राप्त हो, विषय भोग करने लगे।

यद्यपि मुनि जी शरीर से तो इतने बड़े भोगी थे, तथापि वास्तव में मन के निर्दोष और परम विरक्त ही थे, क्योंकि भोगाभोग सुख दुख से निर्द्वन्द्व थे।

(श्लोक) सुखदुःखे समेकृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पाप मवाप्स्यसि ॥ १ ॥

(दो॰) "तुलसी" सीताराम पद, लगा रहै जो नेह।
तौ घर घट बन बाट में, कहूं रहै किन देह ॥

(सवैया)

क्षीणरु पुष्ट शरीर को धर्म्म जो शीतहु उष्ण जरामृतठाने। भूख तृषा गुण प्राण को व्यापत

शोकरु मोहहु भय मन आनै। बुद्धि बिचार करै निशि बासर। चित्त चितेसे अहं अभिमानै। सर्वको प्रेरक सर्व को साक्षि जु "सुन्दर" आप को न्यारोहि जानै ॥ १ ॥ एकही कूप ते नीरहि सींचत ईख अफीम हि अम्ब अनारा। होत वही जलस्वाद अनेकनि मिष्टकटूकनि खट्टकखारा। त्योंहिं उपाधि संयोगते आतम दीसत आयमिल्यो सबिकारा। काढ़िलिये सुबिबेक बिचार सो "सुन्दर" शुद्धस्वरूप है न्यारा ॥ २ ॥

भगवत कृपा से दम्पति भगवद् भजन से

(चौ०) रघुपति चरण प्रीति अति जिनहीं।
विषय भोग बश करैं कि तिनहीं॥

न चूके वरंच भजन प्रभाव से भगवद्धाम को गए।

श्रीवशिष्ठ जी।

"बड़ वसिष्ठ सम को जग माहीं" ॥

मुनीश्वर अनन्तश्री वशिष्ठ जी महाराज श्रीब्रह्मा जी के पुत्र, श्री रघुकुल के गुरु हैं। आप प्रायः सब शास्त्रों के आचार्य्य हैं। स्वर्ग और भूमि के बीच आकाश में बहुत दिन स्थित रह के आप ने युगल सरकार का भजन किया है।

"सो गुसाईं विधिगति जिन छेकी"।

आपने भजन प्रभाव से एक दूसरे ब्रह्माण्ड में जाके वहां के ब्रह्मा जी से मिले हैं।

उपदेश आदि के लिये आप कई शरीर धारण किये हुए कई स्थान पर रहते हैं; जैसे, (१)ब्रह्मलोक में; (२) धर्मराज की सभा और (३) श्रीअवध में। (४)"सप्त ऋषियों" में भी आप हैं। इत्यादि

श्रीविश्वामित्र जी अपार तप करने पर भी "ब्रह्मर्षि" तो तब हुए, कि जब आप (भगवान् श्री१०८ वशिष्ठ जी) ने उनको "ब्रह्मर्षि" कहा। परमाचार्य्य जगद्गुरु महर्षि श्री १०८ वशिष्ठ जी महाराज की, तथा अपने २ श्रीगुरु महाराज की, महिमा को जो विचारै सो परम बड़भागी है।

(क०) जगमें न कोऊ हितकारी गुरुदेवसों॥ बूड़त भव-सागर में आयके बँधावैधीर पारहूलगायदेत नावकी ज्यों खेव सों। परउपकारी सब जीवनके सारेकाज कबहूँ न चावै जाके गुणनको छेवसों। बचन सुना-यकर भ्रमसब दूरि करै "सुन्दर" दिखायदेत अलख अभेवसों। औरहूसुनेहि हम नीके करि देखे शोधि जगमें न कोऊ हितकारीगुरु देवसों॥१॥

गुरुकी तो महिमा है अधिकगोबिंदते॥ गोबिंदके कियेजीव जात हैं रसातल को गुरु उपदेशी सोतो छूटै यमफंदते। गोबिंद के किये जीव बशपरे कर्म-नके गुरुके निवाज सूं तो फिरतसुछंदते। गोबिंदके कियेजीव बूड़तभवसागर में "सुन्दर" कहत गुरु काढ़ै दुखद्वंदते। कहांलौं बनाय कछु मुखते कहूं जू और,

गुरुकी तो महिमा है अधिक गोबिंदते ॥ २ ॥

आप का "योग वाशिष्ठ" संज्ञक ग्रन्थ प्रसिद्ध ही है ॥

(दो०) "श्रीवशिष्ठ मुनिनाथ यश, कहौं कवन मुँह लाय । जिन्हें स्वयं श्री राम ही, लीन्हो गुरू बनाय ॥१॥

(चौ०) "राम ! सुनहु" मुनि कह कर जोरी । "कृपा सिन्धु ! बिनती कछु मोरी ॥ महिमा अमित वेद नहिं जाना । मैं केहि भांति कहउँ भगवाना ! ॥ उपरोहिती कर्म अति मन्दा । वेद पुरान सुमृति कर निन्दा ॥ जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही । कहा 'लाभ आगे सुत ! तोही ॥ परमातमा ब्रह्म नर रूपा । होइहिं रघुकुलभूषन भूपा' ॥

(दो०) तब मैं हृदय बिचारा, जोग जज्ञ व्रत दान । जाकहँ करिय सो पइहउं, धर्म न एहि सम आन ॥

(चौ०) तवपद पंकज प्रीति निरन्तर । सब साधन कर यह फल सुन्दर ॥ दक्ष सकललच्छनजुत सोई । जाके पदसरोजरति होई ॥ [दो०] नाथ ! एक वर मांगउं, राम ! कृपा करि देहु । 'जनम जनम प्रभुपदकमल, कबहुं घटइ जनि नेहु' ॥ "

श्रीसौभरि जी ।

श्रीसौभरि जी की कुछ कथा, श्री मान्धाता जी की कथा के अन्तर्गत (पृष्ठ २७८ में) आचुकी है ।

श्रीसौभरी जी को जल में मछलियों का विलास देख के विषय वासना हुई। श्रीमान्धाता जी (पृष्ठ२७८) की कन्यायों को तपबल से अपना युवा स्वरूप दिखा के प्रसन्न कर, उनके पितासे मांगलिया; और अपने तप प्रभाव से बड़ा विभव रचके उनमें उन पचासों सहित बास किया। बहुत दिन भोग विलास करने पर मोह निशा से नींद टूटी और राम कृपा से तब मुनिजी महाराज पश्चाताप करने तथा सोचने विचारने लगे कि-(दो०) दीप शिखा सम युवति जन, मन जनि होसि पतंग। भजसि राम तजि काम मद, करसि सदा सत संग॥

(सवैया)

हे तृष्णा! अब तौ करितोषा॥ बाद वृथाभटकै निशिबासर दूरिकियो कबहूं नहिं धोषा। तू हति-यारिनि पापिनिकोढ़िनि सांच कहूं मतिमानहिं रोषा। तोहिंमिले तबते भयो बंधन तू मरिहै तबहीं होयमोषा। "सुन्दर" और कहा कहिये त्वहिं हे तृष्णा! अबतौ-करितोषा॥ १

हे तृष्णा! त्वहिं नेक न लाजा॥ तूही भ्रमाय प्रदेश पठावत बूड़तजाय समुद्र जहाजा। तूही भ्रमाय पहाड़ चढ़ावत वाद वृथा मरिजाय अकाजा। तैं सब लोक नचायभलीबिधि भांड़किये सबरंकहुराजा।

"सुन्दर" एतो दुखाय कहीं अब हे तृष्णा! त्वहिं नेक न लाज़ा ॥ २ ॥

भौंह कमान सयान सुठान जो नारि बिलोकनि बाण ते बांचै। कोप कृसानु गुमान अवा घट जे, जिनके मन आंच न आंचै ॥ लोभ सबै नट के वश ह्वै, कपि ज्यों जग में बहु नाच न नांचै। नीकेहैं साधु सबै, "तुलसी," पै तेई रघुबीर के सेवक सांचै ॥ ३ ॥ (वि० प०) अबलौ नसानी अब न नसैहौं ॥ &c. &c. ॥

इनकी उन स्त्रियों को भी विराग उत्पन्न हुआ; श्रीसीतारामजी का भजन करके आपने और उन सब की सब ने परमधाम पाया ॥

श्री कर्द्दम जी।

श्रीकर्दमजी श्रीब्रह्मा जी की छाया से प्रगट हुए।

श्री ब्रह्मा जी ने सृष्टि की आज्ञा दी, पर इनको इनके तीव्र वैराग्य ने गृहस्थाश्रम अंगीकार करने न दिया। और वे बन में जाकर तप करने लगे। प्रभु ने दर्शन दिया। रामचरण पंकज जब देखे। तब निज जन्म सफल करि लेखे ॥ प्रभुने आज्ञा की कि "परसों स्वायम्भू मनु तुम्हारे पास आकर अपनी लड़की देवहूति (पृष्ट २०३) तुम्हें देंगे; स्वीकार कर लेना। 'ताके मैं लैहौं अवतारा। करिहौं योग ज्ञान परचारा' ॥"

श्री देवहूति जी की सेवा से प्रसन्न होकर, आप (श्रीकर्दम जी) ने विश्वकर्मा से एक विमान बनवाया तथा श्रीदेवहूति जी की सेवा के अर्थ सहस्र सुन्दरियां भी प्रगट कीं। सब समेत विमान में बसके भोग विलास करते लोकों में विचरने लगे। श्रीदेवहूति जी को अति सुख दिया।

(दो०) धर्मशील हरिजनन के, दिन सुखसंयुत जाहिँ।
सदासुखीअति मीनगण, जिमि अगाध जल माहिँ॥

दम्पति से श्री कपिल भगवान (पृष्ट ६१) ने अवतार लिया; और ९ (नव) लड़कियां भी हुईं। जिनका विवाह श्रीब्रह्मा जी के ९ (नव) बेटों से हुआ–

(१) श्रीअरुन्धती जी से श्रीवसिष्ठजी महाराज का;	(८) श्रीख्याति, भृगु जी;
	(३) श्रीअनुसूया, अत्रि जी
(२) श्रीकला, मरीचि जी;	(५) श्रीहवी, पुलस्त जी;
(४) श्रीश्रद्धा, अङ्गिरा जी;	(७) श्रीक्रिया, क्रतु जी,
(६) श्रीगति, पुलह जी;	(९) श्रीशान्ति, अथर्वनजी॥

श्रीकर्द्दम जी, अपनी धर्म्मपत्नी देवहूती जी को यह आशिष देकर कि "भगवान् श्रीकपिलदेव (तुम्हारे पुत्र) अपनी माता का (तुम्हारा) भवबन्धन छुड़ावेंगे", आप परम विरक्त हो, बन में जा, भगवत चरण-कमल के परम अनुरक्त हुए॥

श्री अत्रि जी; श्रीअनुसूया जी।

श्रीअत्रिजी श्रीब्रह्माजी के पुत्र हैं। आपने

अपनी धर्मपत्नी श्रीअनुसूया जी सहित महेन्द्राचल पर (श्रीचित्रकूट में) तप किया ।

आप निज तपबल से श्रीसुरसरिधार मन्दाकिनी जी, पयसरनी जी, को लाईं ।

श्रीअत्रिजी ने चाहा कि जगदीश मेरे पुत्र हों । हरि ने विधि हर युत कृपा करके दर्शन तथा बरदान दिया कि "बहुत अच्छा, श्रीअनुसूया जी के गर्भ से हमतीनों के अंशावतार होंगे" । सो, वैसाही हुआ, अर्थात् (१) श्रीविष्णु भगवान् के अंश से "दत्तात्रेय जी (पृष्ठ६१); (२) श्रीब्रह्मा जी के अंश से "चन्द्रमा" मुनि जी; और (३) रुद्रांश से श्री दुर्वासा जी ।

श्रीअनुसूयाजी और श्री अत्रि जी की अभिलाषा हुई कि श्रीसीताराम जी के दरशन पाऊं ।

लाल लाडले श्री लखन जी सहित भक्तवत्सल श्रीसीताराम जी ने आप के आश्रम पर जा दर्शन दिया । सो श्री "रामचरितमानस" से सब प्रेमियों को विदित ही है ॥

श्री गर्ग जी ।

श्रीगर्गाचार्य्य जी ने बड़ा तप किया । बहुतों को विद्या पढ़ाई । यदुवंश के पुरोहित और श्रीकृष्ण भगवान् के गुरु हैं । श्रीगर्ग संहिता में श्रीकृष्ण भगवान् के अति मनोहर चरित लिखे हैं । "गर्ग संहिता" विख्यात ग्रन्थ, सुनने योग्य है ॥

श्री गौतम जी ।

श्रीसरयू के तट पर जहां, (गोदना सेमरिया), कार्त्तिक पूनो को बहुत सन्त और लोग एकट्ठे होते हैं और अहल्या जी की सुन्दर मूर्त्ति है, वही श्रीगौतम जी का आश्रम है। आप "न्यायशास्त्र" के आचार्य्य हैं।

गुणवती आदरणीया सुशीला परमसुन्दरी श्रीअहल्या जी "पंच कन्याओं" (१ अहल्या; २ द्रौपदी; ३ तारा; ४ कुन्ती; ५ मन्दोदरी) में से, प्रसिद्ध हैं ही; बहुतों ने आप की चाह की तब श्रीब्रह्मा जी ने आज्ञा दी कि "जो एक दण्ड (२४ मिनिट) भर में त्रिभुवन की परिक्रमा कर आवे उसीको यह कन्या दी जावे।"

श्रीगौतम जी की सालिग्राम जी में अलौकिक निष्ठा थी; उनके सालग्राम जी ने आज्ञा की कि तू मेरी प्रदक्षिणा कर ले; इन ने ऐसाही किया। इन्द्रादि जो अपने अपने बाहन ऐरावतादि पर सहर्ष चले थे, सब ने अपने अपने आगेही श्री गौतम जी को जाते हुए देखा और सब ने उनका अग्रगण्य होना स्वीकार किया। इन्द्रादि हाथ मलते रह गए, और श्रीगौतम जी का विवाह श्रीअहल्या जी से, हो गया। श्रीगौतम जी की कृपा से श्री अहल्या जी को प्रभु ने दर्शन दिया।

एक समय बड़े दुःकाल में पंचवटी से भाग के मुनिवृन्द श्रीगौतम जी के आश्रम में आए। तप बल से आप सब का आतिथ्य और बहुत सत्कार करते रहे।

आप के ही पुत्र महामुनि श्रीशतानन्द महाराज जी हैं, कि जो परमपुनीत श्रीनिमिवंश के गुरु हैं॥

श्रीशुकदेव जी।

श्री व्यासशिष्य अर्थात् परमहंस श्रीशुकदेवजी की कथा पृष्ठ ५। ९२ में देखिये। गऊ के दूध दुहने में प्रायः जितना काल लगता है, आप उससे अधिक काल पर्य्यन्त एक समय कहीं नहीं बिलम्बते रुकते हैं। आप अमर हैं॥

श्रीलोमश जी।

श्रीलोमश जी के आयु की दीर्घता प्रख्यात ही है।

श्रीलोमश जी यमुना जी के तट पर तप कर रहे थे, श्रीकृष्ण भगवान् का बाल चरित देख के भ्रम बश हुए कि "ये परमेश्वर कैसे कहे जाते हैं?" अतः हरि ने उनको अपने स्वांस से खींच कर अपने में अनेक ब्रह्माण्ड तथा अनेक लोमश और बहुत से अद्भुत चरित्र दिखाए, जिसे कल्पान्त पर्य्यन्त देखते देखते ये अति घबराए, व्याकुल हुऐ; तब कृपासिन्धु ने इनको स्वांस ही द्वारा बाहर कर दिया। इनको वे कई कल्पान्त केवल एक क्षण मात्र सरीखा जान पड़ा।

भ्रम से छूट प्रभु की स्तुति की; भक्ति बरदान लिया।

इनने भगवत् की माया देखनी चाही, और श्रीमन्नारायण से अपना मनोरथ निवेदन किया। भगवत की इच्छा से प्रलयादि देखा; जब बहुत विकल हुए, हरि ने माया अलग की। तब इनने ज्यों का त्यों अपने को पाया और सब अद्भुत चरित्र को एक क्षण मात्र का खेल जाना। बड़ी स्तुति की। "चिरंजीवी मुनि" यह नाम और वर पाया।

एक समय अपने चिरंजीवित्व वा दीर्घायुता से अकुला कर इनने अपना मृत्यु भगवान् से मांगा। प्रभु ने उत्तर दिया कि "यदि जलब्रह्म की वा ब्राह्मण की निन्दा करो तो उस महा पातक से मर सकते हो।" इनने कहा कि आश्रम में जाता हूं वहां पहुंच कर ऐसाही करूंगा। मार्ग में भगवत इच्छा से इनने थोड़ा सा जल देखा जिसमें शूकर के लोटने से अतिशय मलीनता आगई थी, और एक स्त्री भी देखी जिसके गोद में दो बालक थे। इनके देखतेही देखते उसने पहिले एक बालक को दूध पिलाया फिर अपना स्तन धोकर तब दूसरे बच्चे को। लोमश जी ने इसका कारण पूछा; उसने कहा कि "यह एक पुत्र तो ब्राह्मण के तेज से है, और वह दूसरा दुसाध [नीच जाति] से अर्थात् मेरे पति से जन्मा है; अतएव ब्राह्मणोद्भव को धोए स्तन का दूध पिलाया है।"

श्रीलोमश मुनि जी का नियम था कि ब्राह्मण का चरणोदक नित्य अवश्य लेते थे। दूसरा जल वा दूसरा ब्राह्मण वहां मिला नहीं; मुनि महाराज ने उसी जल से उसी ब्रह्मवीर्य्य-से-उत्पन्न बालक का चरणामृत ले लिया ॥ उसी देशकाल में, प्रभु प्रगट हो बोले कि "तुमने जब ऐसे जल को भी आदर दिया और ऐसे ब्राह्मण के चरण सरोज की भी भक्ति की, तो तुम जल वा विप्र के निन्दक कब हो सकते हो? मैं तुमसे अति प्रसन्न हूं और आसीस देता हूं कि विप्रप्रसाद से तुम 'चिरंजीव' ही बने रहोगे।"

(चौ०) जे नर विप्ररेणु सिर धरहीं।
ते जनु सकल विभव वश करहीं ॥

रे मन! आजकल के एकप्रकार के बुद्धिमानों की बातें न सुन, नहीं तो ब्राह्मणों के चरणरज की यह महिमा तुझे भूल ही जावेगी "हरितोषक ब्रत द्विज सेवकाई" ॥

(चौ०) पुण्य एक जग महँ, नहिँ दूजा।
मन क्रम वचन विप्र पद पूजा ॥

श्री ऋचीक जी।

भृगुवंशी "श्री ऋचीक जी" ने श्रीगाधिजी से उनकी सुता (श्री विश्वामित्र जी की बहिनि) श्री "सत्यवती" जी को माँगा। उनने विचारा कि 'कन्या

तो छोटी है और मुनि बूढ़े हैं, परन्तु सीधे २ "नहीं" कहने में मुनि के क्रोध का भय है; अतः उनने इनसे कहा कि "यदि आप १००० [एक सहस्र] श्यामकर्ण घोड़े लाइये तो मैं आप को अपनी कन्या दूं"। वह इस बात को असम्भव जानते थे।

पर, मुनि ने, "श्रीबरुण जी" से मांग के, सहस्र श्यामकर्ण घोड़े बिना प्रयास उनके सामने प्रस्तुत करदिये; तब तो उन्हे लड़की देनी ही पड़ी। मुनि जी श्री सत्यवती सी धर्मपत्नी पा अतीव प्रसन्न हुए।

अपनी सास (श्रीगाधिजी-की स्त्री) की, तथा अपनी धर्मपत्नी की प्रार्थना से, आपने दोनों को क्षीरान्न मन्त्रित करके दिया, कि जिसमें उनकी प्रिया को ब्राह्मण और उनकी सास को क्षत्री प्रसव हो। परन्तु ईश्वर की इच्छा से मां बेटी ने अपना अपना भाग क्षीरान्न पलट दिया। आपने यह बात जान ली, और अपनी स्त्री से कहा कि तुमने अयोग्य कार्य्य किया, अब तुम्हारे सत्वगुणी पुत्र नहीं होगा किन्तु राजस-तामस-प्रकृति-का होगा।

पुनः, श्रीसत्यवती जी की प्रार्थना के अनुरूप आपने यह बर दिया कि "अच्छा, पुत्र तो राम कृपा से समदर्शी परन्तु पौत्र बड़ा क्रोधी होगा"। इसी आशीर्वाद से पुत्र तो श्रीसीताराम कृपा से श्री यम-

दग्नि जी सरिस किन्तु पौत्र परशुराम जी सरीखा हुए; तथा गाधिजी के पुत्र श्री विश्वामित्र जी इव। अस्तु ।

श्री ऋचीक मुनि जी बड़े प्रभावशाली और भगवत भक्त थे । आप के समागम से गाधिजी भी हरिभक्त हो गए ॥

[सवैया]

संतनकी जु प्रभाव है ऐसो ॥ जो कोउ आवत है उनके ढिग ताहि सुनावत शब्द संदेसो । ताहिको तैंसही औषध लावत जाहिको रोगहि जानत जैसो ॥ कर्म कलंकहि काटत हैं सब शुद्धकरैं पुनि कंचन पैसो। सुन्दर तत्व बिचारत हैं नित संतन को जु प्रभाव है ऐसो ॥

श्रीभृगु जी ।

श्रीभृगु ऋषि जी श्रीनारदजी के उपदेश से बड़े भगवद्भक्त हुए। ये बहुत सी विद्याओं के आचार्य्य हैं । इनने परीक्षा के अर्थ भगवान् की छाती में लात मार कर ब्राह्मणों की महिमा और भगवत का अपार सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मण्यदेवत्व यश प्रगट किया है । प्रभु ने इनको त्रिकालदर्शी ऐसा आसीस दिया है ॥

श्री भृगु जी का माहात्म्य प्रगट ही है कि—

(श्लोक) "महर्षीणां भृगुरहं, गिरामस्म्येकमक्षरम् ।

यज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः" ॥ १ ॥ श्रीगीता जी में भगवत ने श्रीमुख से कहा है कि 'मैं महर्षियों में "भृगु" हूं; शब्दों में एकाक्षरी मंत्र ॐ [ओम्] हूं; यज्ञोंमें जप यज्ञ हूं; और पहाड़ों में गिरिराजहिमालय हूं॥'

श्रीदाल्भ्य जी।

विप्रवर श्रीदाल्भ्य जी ने भगवान् श्रीदत्तात्रेय जी के उपदेश से श्रीसीताराम जी का भजन किया। प्रभु ने दर्शन दिया। हरि आशिष से दाल्भ्य संहिता दैहिक दैविक भौतिक तीनों तापों को छुड़ानेवाली और सर्वकार्य्य सिद्ध करनेवाली है॥

श्रीअङ्गिराजी।

श्रीअङ्गिरा जी ने श्रीनारद जी के उपदेश से वासुदेव भगवान् की पूजा की। इनके बृहस्पति जी पुत्र हुए, जिनको अपनी जगह पर समझ के, भगवत का ध्यान करते हुए आपने भगवद्धाम पाया॥

श्री ऋषिशृङ्ग जी।

श्रीऋषिशृङ्ग जी श्रीविभाण्डक मुनि के पुत्र हैं। इनने अपने पिता से विद्या पढ़ी। ये नित्य विपिन

ही में रहा करते थे, ग्राम पुरी नगर को स्वप्न में भी नहीं देखा था। बड़ेही वैराग्यवान थे।

बंग देश से पश्चिम जो देश (जिस्में विहार) है उस्को ही "अङ्ग" देश कहते हैं; उसकी राजधानी अभी तक पटना नगर है। वहां के राजा "श्रीरोमपाद" जी थे, उन में और चक्रवर्त्ति महाराजाधिराज अवधेश श्रीदशरथ जी में परस्पर बड़ी मित्रता थी। श्रीरोमपाद जी की कन्या श्रीशान्ता जी थीं, जो प्रभु श्रीरामचन्द्र जी की भगिनी (बहिन) प्रसिद्ध* हैं। अस्तु।

अङ्ग देश में दुःकाल पड़ा; ज्योतिषियों ने बताया कि यदि श्री शृङ्गीऋषि जी आवैं तो यह महा अवर्षण मिटे, जल बरसे।

निदान वेश्याओं ने बड़ी युक्ति की और बन से आप को पटने लाईं। दुर्भिक्ष मिट गया। और विभाण्डक मुनि के भय से श्रीरोमपाद जी ने अपनी कन्या का विवाह श्रीशृङ्गिऋषि जी से कर दिया। और इस प्रकार इनके पिता को प्रसन्न किया॥

जब श्री चक्रवर्त्ति महाराज को बंश न होने से खेद हुआ, तो–

(चौ०) सृंगी रिषि हिँ बसिष्ठ बुलावा। पुत्र काम

* (श्लो०) श्रीमान् दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्। अपत्यकृतिकां राज्ञे लोमपादाय यां ददौ।

सुभ जज्ञ करावा ॥ तब, (दो०) विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार। निज इच्छा निर्मित तनु मायागुनगो पार ॥

श्रीमाण्डव्य जी।

श्रीमाण्डव्य मुनि श्रीभगवत के अनुराग में रँगे प्रेम में मग्न ध्यान समाधि में थे, उनकी कुटी के पासही चोर सब चोरी के द्रव्य को बांट रहे थे। राजा सुकेतु के भट वहां पहुंचे, एक चोरने फुर्ती से एक मणिमाला मुनि के गले में छोड़ दी। भटों ने मुनि समेत कई चोरों को पकड़, न्याय कर्त्ता तथा राजा की आज्ञा से सब के सब को सूली पर चढ़ा दिया। मुनि हरिस्मरण में मग्न थे इसकी कुछ सुधि न हुई।

सब चोर मर गए, पर मुनि की फांसी तीन बेर टूट २ गई। राजा ने, "एक चोर का मुनि के वेष में होना तथा सूरी पर चढ़के भी उसका जीते ही बचना" सुनके, उसको अपने सामने लाने की आज्ञा दी। चोर के भ्रम में, वा कर्मचारियों के अत्याचार में, अथवा पूर्व कर्म के फन्दे में, पड़े हुए श्री माण्डव्य जी, राजा के सामने लाये गए।

मुनि जी को पहिचान, थर थर कांपता हुआ राजा सिंहासन सेउठ शीघ्र आप के पदपंकज पर सीस धर

हाथ जोड़ सजल नयन हो अपराध की क्षमा मांगने लगा। महामुनि ने धीरे से कहा कि "राजा! तेरा कुछ दोष नहीं; यह यमराज की चूक है; मैं अभी जाके इसका उत्तर उसहीसे पूछता हूं"।

मुनि के क्रोध से डर यमराज ने हाथ जोड़ कहा कि "मुनिनाथ! यह आप के पूर्व जन्म की बाल अवस्था के दोष का फल था, कारण जो आपने एक पतंगे (फ़रफुंदे) के शरीर में नीचे से ऊपर तक एक कांटा छेद दिया था"।

आप बोले "रेमूर्ख! अज्ञान बालक को भी तूने न छोड़ा, जिसका दोष धर्म्मशास्त्र भी ग्रहण नहीं करता। जा, शूद्र के योनि में जन्म ले, दासी पुत्र हो"। वही श्री-यमराज जी श्रीविदुर जी हुए बड़े भगवद् भक्त॥

"मुनि शाप जो दीन्हा अति भलकीन्हा॥"

श्रीमाण्डव्य मुनि भगवत भजन कर, शरीर तज, परम धाम को गए॥

श्रीविश्वामित्र जी।

श्रीविश्वामित्र जी राजा थे, राजा गाधि के पुत्र। एक बेर राजा बिश्वामित्र नगर ग्राम देखते बन में गए। मुनीश्वर श्रीबशिष्ठ जी का आश्रम देखा। वहां इनकी सेना सहित भारी सत्कार और पहुनई हुई। यह नन्दिनी

वा सबला नाम गऊ का प्रताप जानकर राजा ने गऊ मांगी, पर ब्रह्मर्षिशिरोमणि ने नहीं कर दी। राजा ने युद्ध किया। परन्तु, यद्यपि उसकी बड़ी भारी सेना थी तथापि राजा जीत न सका, पराजय पाया। तब ब्रह्मर्षि की महिमा समझ उसने चाहा कि ब्राह्मण बनूं; इसलिये अपार तप किया; और अन्त को, श्री वशिष्ठ जी महाराज की कृपा से, श्रीविधि जी से विश्वामित्र जी "ब्रह्मर्षि" पद पाके बहुत प्रसन्न हुए।

☞ ३२६ तीन सौ छब्बीसवां पृष्ठ देखिये—

कानपुर के जिले में बल्हौर स्टेशन से मकनपुर को जाना होता है, उसी मण्डलमें "शृङ्गीरामपुर" ग्राम है;

ऐसो प्रख्याति है कि मकनपुर "बिभाण्डक ऋषि' का स्थान है उसमें लोग यह प्रमाणित करते हैं कि जब राजा के कर्मचारियों से प्रेरित वेश्यायें बड़ी नौका पर आरूढ़ हो मधुर गान नृत्य करती हुई बाजे के साथ वहां आ पहुंचीं, उस समय श्रीविभाण्डक जी कहीं दूर जाने के लिये अपने पुत्र के सर्वोपद्रव से रक्षार्थ एक मेंडरा ◯ खींच कर चले गये थे। धीरे २ गङ्गा तट पर नाव आन पहुंची। शृङ्गीऋषि जी मधुर अपूर्व गान सुनकर मेंडरे को उल्लंघन करके देखने चले॥ श्रीशृङ्गी जी तो स्त्री जाति पुंजाति का भेद हो नहीं जानते थे, तट पर जाकर खड़े २ गान सुनते रहे। इस भांति तीन दिन जाते आते रहे। नौका पर लगे गमलों के वृक्षों के फल की जगह लड्डू लटकाये गये थे एक वेश्या ने उस में से कुछ फल लेकर ऋषि को भेंट किया और कहा कि हमारे देश के ये फल हैं; ऋषि ने खाकर अपने स्थान के भी फल उन्हें उपहार किये। चौथे दिन एक वेश्या ने कहा कि हमारे देश की यह रीति है कि अपने प्रेमियों से प्रेमी लोग भेंटते हैं। शृङ्गी जी तो कुछ जानते ही न थे, आलिङ्गन के साथ ही कुछ ऋषि का चित्त उस ओर खिंच गया, तदनन्तर वे नौका पर भी गान सुनने जाने लगे एक दिन ऋषि को राग सुनने में मग्न देख शन. नौका छोड़ दी गई-परंच ऋषिको नौका के भीतर न जानपड़ा कि हम कहीं जाते हैं क्योंकि कभी उन्होंने नौका देखी न थी॥ स्वस्थान में जब नाव कई दिनों के पीछे आ गई-तब ऋषि लोग शृङ्गी जी को लेने गये-फिर अवर्षण मिटा-आगे की कथा तो विख्यात ही है-

उसी विभाण्डक के मेड़रा (•) के स्थान में स्त्री जाने से भस्म हो जाती थी इस चमत्कार को देख मुसलमानों ने स्वराज्य के समय उस पर अधिकार कर लिया ॥ अब भी स्त्री जाति मात्र को भीतर जाने की आज्ञा नहीं है, अद्यापि वहां बड़ा मेला लगता है परन्तु मेला दूसरेही अभिप्राय से होता है-वाणिज्य विशेष होती है ॥

श्रीविश्वामित्र जी को अब यह लालसा बाढ़ी कि—सियपियपद सरोज जब देखौं । सुकृत समूह सफल तब लेखौं ॥ इस मनोरथ से यज्ञ करने लगे, पर ताड़का राक्षसी और उसके पुत्र सुबाहु आदि ने उपद्रव और उत्पात करना आरंभ किया ।

(चौ०) तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा । प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ॥ एहु मिस देखहुं प्रभुपद जाई । करि बिनती आनउं दोउ भाई ॥

(सो०) पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनिभय हरन । कृपा सिन्धु मति धीर, अखिल विश्वकारन करन ॥

प्रभु ने आपसे अस्त्रादि विद्या पढ़ी, और आपको अनन्त श्रीगुरु बशिष्ठ जी सम आदर दिया । जय, जय ॥

श्रीबिश्वामित्र जी की स्तुति और क्या की जावे ? इससे इति है कि (चौ०) जिन्हके चरन सरोरुह लागी । करत बिबिध जप जोग बिरागी ॥ तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुरुपद कमल पलोटत प्रीते ॥

श्री दुर्वासा जी ।

श्रीअत्रि जी की कथा (पृष्ठ ३१८) में लिखी जा

चुकी है कि श्री दुर्वासा जी उनके पुत्र और रुद्र के अवतार हैं। श्री ब्रह्मा जी प्रायः इन्ह के द्वारा, लोगों को शाप दिलाया करते थे। इनकी कथा पुराणों में बहुत हैं। समर्थ की इर्षा कौन कर सकता है? भगवत के जितने काम हैं गूढ़ हैं उनका भेद जानना कठिन है॥

श्री अम्बरीष जी के (पृष्ठ १२६) तथा श्रीद्रौपदीजी के (पृष्ठ १८८) सुयश के प्रसङ्ग में कुछ इनकी चरचा इस ग्रन्थ में भी हो चुकी है।

साठ सहस्त्र वर्ष तप किया, पूरे होने पर श्रीनन्द जी के घर आए; माता श्री यशोमति जी ने प्रेम से अति उत्तम दधि, जिस्में से भगवत को पवाया था, आप को भी पवाया। श्रीदुर्वासा जी ने, अति प्रसन्न होकर, उनको "गोपाल कवच" पढ़ा दिया और वरदान दिया कि इस कवच को जो पढ़ेगा वा इससे जिस्को झार देगा सो तीनों तापों से बचेगा॥

श्री याज्ञवल्क्य जी।

आप बड़े प्रतापी मुनि हैं। आपने पहिले श्री सूर्य्यनारायण से विद्या पढ़ी। किसी कारण से सूर्य्य भगवान् अप्रसन्न हुए तो इनने सब विद्या उगल दी (वमन कर दिया)। यह पराक्रम देख प्रसन्न हो श्री रविदेव ने वर दिया कि जो तुम से वाद विवाद करेगा उस्का

सीस फट जागा। पृष्ठ २८४ देखिये ॥

कह चुके हैं कि आपने श्रीराम चरित मानस (तथा अद्भुत रामायण) श्री भरद्वाज जी को सुनाए हैं।

श्री जाबाली जी।

आप श्री अवधेश जी के मंत्रियों में से थे।

श्री यमदग्नि जी।

श्रीयमदग्नि ऋषि, भक्ति सहित अग्निहोत्र यज्ञ किया करते थे और इनकी स्त्री श्री रेणुका जी आपकी सेवा करती थीं। एक दिन, अति अप्रसन्न होके, आपने अपने पुत्र श्रीपरशुराम जी से आज्ञा की कि तू अपनी माता (रेणुका) का, तथा अपने दोनों बड़े भाइयों के, सीस अपने परशु से उतार ले।

श्रीपरशुराम जी ने पिता की आज्ञा मान ली [दो०] "अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन। ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति ऐन॥

आपने बहुत प्रसन्न हो पुत्र से कहा बरमाँग। परशुराम जी ने माँगा कि "एक तो इन तीनों को जिला दीजिये, दूसरा यह वरदान दीजिये कि ये तीनों मुझ से सदैव अति प्रसन्न रहा करें॥

श्रीसीताराम कृपा से ऐसाही हुआ।

श्री कश्यप जी ।

श्रीकश्यप जी श्री मरीचि मुनि के पुत्र हैं। भगवत ने आप को दर्शन दे आज्ञा की कि सृष्टि उत्पन्न करो।

कश्यप जी से बहुत कुल प्रगट हुए हैं कि जो "कश्यप गोत्र" प्रसिद्ध है ॥

एक काश्यपी कल्प हुआ था जिस्में सब सृष्टि कश्यप जी से ही हुई थी ।

श्रीमार्कण्डेय जी ।

श्रीमार्कण्डेय जी ने प्रभु से विनय की कि मुझे अपनी माया दिखाइये। देखा कि जल बाढ़ आया और प्रलय हो गया, सर्वत्र जलमय, और कहीं कुछ नहीं। अपने को उस जल में इधर उधर बहते डूबते उतराते पाया। अनेक वर्ष पर्य्यन्त ऐसाही बीतने पर, एक वट वृक्ष के एक पत्ते पर बालक स्वरूप प्रभु का दर्शन पा, स्वांस द्वारा उनके उदर में जा, वहां अनेक अद्भुत देख, पुनिबाहर आ, बड़ी स्तुति कर, हरिकृपासे, हरि-की-उस-माया से निकले ॥

श्रीमायादर्श जी ।

कोई कहते हैं कि मायादर्श एक भक्तविशेष का ही नाम है। पर उनका पता तो कहीं चलता मिलता नहीं ।

बहुतेरे बताते हैं कि मायादर्श श्रीलोमश जी, वा श्रीमार्कण्डेय जी हैं; क्योंकि दोनों ने माया देखी है। इन महात्मा की कथा पृष्ठ ३२० और ३३३ में देखिये

श्रीपर्वत जी ।

"अद्भुत रामायण" में लिखा है कि एक कल्प में इन्हीं के शाप से श्रीलक्ष्मीनारायण जी ने अवतार लेकर रावण कुम्भकर्ण का बध किया।

श्रीपराशर जी ।

श्रीब्रह्मा जी के पुत्र श्रीवशिष्ठ जी उनके पुत्र श्री शक्ति जी उनके पुत्र श्रीपराशर जी हैं। प्रभु ने दर्शन दे के आज्ञा की कि "मैं तुम्हारा पुत्र हूंगा।"

श्रीपराशर जी ही के पुत्र श्रीव्यास भगवान् (पृष्ठ ६१) हैं, जिनने पुराण बनाए हैं॥

(१/८ १/४ १/२) छप्पय ।

साधन साध्य सत्रह पुरान, फलरूपी श्री भागवत॥ ब्रह्म[१] विष्णु,[२] शिव,[३] लिङ्ग,[४] पद्म,[५] स्कन्द[६] विस्तारा। वामन,[७] मीन,[८] बराह,[९] अग्नि,[१०] कूरम[११] ऊदारा॥ गरुड़,[१२] नारदी[१३] भविष्य,[१४] ब्रह्मवैवर्त,[१५] श्रवण

शुचि। मार्कण्डे,[१६] ब्रह्माण्ड,[१७] कथा नाना उपजै रुचि॥ परम धर्म श्री मुख कथित चतुःश्लोकी निगम सत। साधन साध्य सत्रह पुराण, फल रूपी श्रीभागवत[१८] ॥ १३ ॥ (१७/२१३)

वार्त्तिक तिलक।

सत्रहौ पुराण, साधन रूप हैं; और अठारहवां पुराण श्रीमद्भागवत साध्यफलरूपी है। तदन्तर्गत स्वयं श्री भगवत मुख कथित परधर्म (भगवद्धर्म्म) रूप "चतुश्लोकी भागवत" तो वेदों का सारांशही है। और वे १८ पुराण कैसे हैं कि कोई कोई अति विस्तार हैं, और सब उदार, परम पवित्र, और श्रवण करने से धर्मरुचिउत्पादक विचित्र हैं॥

(सात्विक)		(राजस)	
१ विष्णु पु० श्लोक	२३०००	७ ब्रह्माण्ड पु०,	१२०००
२ नारद पु०,	२५०००	८ ब्रह्मवैवर्त्त पु०,	१८०००
३ श्रीभागवत,	१८०००	९ मार्कण्डेय पु०,	९५००
४ गरुड पु०,	१९०००	१० भविष्य पु०,	१४५००
५ पद्म पु०,	५५०००	११ वामन पु०,	१००००
६ बाराह पु०,	२४०००	१२ ब्रह्म पु०,	१००००
	१६४०००		७४०००

(श्लोक) "वैष्णवं, नारदीयञ्च, तथा भागवतं

(तामस)	
१३ मत्स्य पु०,	१४०००
१४ कूर्म्म पु०,	१७०००

शुभम्। गारुड़ञ्च, तथा पाद्मं, वाराहं शुभदर्शने ॥१॥ षडेतानि पुराणानि सात्विकानि मतानि मे। ब्रह्माण्डं, ब्रह्मवैवर्त्तं, मार्कण्डेयं तथैवच। भविष्यं, वामनं, ब्राह्मं, राजसानि निबोध मे॥ २ ॥ मात्स्यं, कौर्म्मं, तथा लैङ्गं, शैवं, स्कान्दं तथैवच। आग्नेयञ्च, षडेतानि तामसानि निबोधमे॥३॥"

१५	लिङ्ग पु०,	११०००
१६	शिव पु०, *	२४०००
१७	स्कन्द पु०,	८१०००
१८	अग्नि पु०,	१५०००
		१६२०००

सा० १६४००० श्लोक
रा० ७४००० श्लोक
ता० १६२००० श्लोक
जोड़ ४,००,०,०० श्लोक
चार लाख श्लोक

* कोई २ तो "माहेश्वर" नाम का एक उपपुराण कहते हैं, "शिव पुराण" नहीं बताते। वरंच २४००० श्लोक का "वायु पुराण" लिखते हैं ॥

☞ अठारहो पुराणों के श्लोकों की गिन्ती चार लाख (४०००००) प्रसिद्ध ही है ॥

($\frac{१}{८}\frac{२}{४}\frac{०}{२}$) छप्पय।

दश आठ स्मृति जिन उच्चरी, तिन पद सरसिज भाल मो ॥ मनुस्मृति,[१] अत्रै,[२] वैष्णवी,[३] हारितक, यामी[५]। याज्ञवल्क्य,[६] अंगिरा,[७] शनैश्चर,[८] सामर्तक,[९] नामी ॥ कात्यायनि,[१०] सांखल्य,[११] गौतमी,[१२] वासिष्ठी,[३१] दाखी,[१४] सुरगुरु,[१५]

आतातापि[१६] (आतातप), पराशर,[१७] क्रतु[१८] मुनि भाखी ॥ आशा पास उदार धी, परलोक लोक साधन सो। दश आठ स्मृति जिन उच्चरी, तिन पदसरसिज भाल मो ॥ १४ ॥ (१८/२१३)

वार्त्तिक तिलक ।

अठारह स्मृतियां जिन महानुभावों ने कही हैं, उनके चरण कमल मेरे भाल (ललाट) के भूषण हैं; सो वे स्मृतियां कैसी हैं कि आसा रूपी कठिन पास (फांस) के छुड़ाने के लिये उदार बुद्धि देने वाली और लोक परलोक की साधन रूपा हैं—

१ मनु स्मृति,	१० कात्यायनस्मृति
२ आत्रेयस्मृति,	११ सांखल्यस्मृति
३ वैष्णवस्मृति,	१२ गौतमस्मृति,
४ हारितस्मृति,	१३ वाशिष्ठस्मृति
५ याम्यस्मृति,	१४ दाक्ष्यस्मृति,
६ याज्ञवल्क्यस्मृति,	१५ बार्हस्पत्यस्मृति,
७ आङ्गिरसस्मृति,	१६ आतातपस्मृति,
८ शनैश्चरस्मृति;	१७ पाराशरस्मृति,
९ साम्बर्तकस्मृति,	१८ क्रतुस्मृति ।

इन अठारह के अतिरिक्त और कई प्रसिद्ध स्मृतियों (धर्मशास्त्रों) के नाम—

व्यास, आपस्तम्ब, औशनस वा, उसना(शुक्र), सांडिल्य, भरद्वाज, काश्यप, शंख, लिखित, इत्यादि।

वसिष्ठ, हारित, पाराशर, भारद्वाज, और काश्यप इत्यादिक कई एक स्मृतियां "सात्विका" कही जाती हैं; आत्रेय, याज्ञवल्क्य, दाक्ष्य, कात्यायनि, इत्यादिक, "राजस"; एवं गौतम, बार्हस्पत्य, सांवर्त, याम्य, इत्यादिक "तामस" कहलाती हैं॥

"दस आठ स्मृति जिन उच्चरी तिन" के नाम—

१ श्रीमनु जी	१० श्रीकात्यायनजी
२ श्रीअत्रि जी	११ श्री शांखल्य
३ श्रीविष्णु जी	१२ श्रीगौतम जी
४ श्रीहारित जी	१३ श्रीवसिष्ठ जी
५ श्रीयमराज जी	१४ श्रीदक्ष जी
६ श्रीयाज्ञवल्क्य जी	१५ श्रीबृहस्पति जी
७ श्रीअङ्गिरा जी	१६ श्रीशातातप जी
८ श्रीशनैश्चर जी	१७ श्रीपराशर जी
९ श्रीसम्वर्त जी	१८ श्रीक्रतुमुनि जी।

(१२१/८५२) छप्पै।

पावैं भक्ति अनपायिनी, जेरामसचिव सुमिरन करैं। धृष्टी, विजय, नीतिपर शुचिर विनीता। राष्टर वर्धन, निपुण, सुराष्टर परम पुनीता। अशोक, सदा

आनन्द धर्मपालक, तत्ववेत्ता। मंत्रीवर्ज सुमंत्र, चतुर्जुग मंत्री जेता। अनायास रघुपति प्रसन्न, भवसागर दुस्तर तरैं। पावैं भक्ति अनपायिनी जे राम सचिव सुमिरण करैं॥ १५॥ (१९/२१२)

"चतुर्युगमन्त्रीजेता"=चारोयुगों के भूत वर्तमान भविष्य मन्त्रियों को जीतनेवाले॥

श्रीरामसचिव (मन्त्रिवर्ग)।

वार्त्तिक तिलक।

अनन्त श्री महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्र जी के मन्त्रिवर्गों को, जो भक्त जन प्रभातादिकालों में नित्य स्मरण करते हैं, सो अचल श्रीरामभक्ति पाते हैं; और अपने परमभक्त सचिवों के स्मरण करने से श्रीरघुपति अनायास (विन परिश्रम) ही प्रसन्न होते हैं; अतः श्रीप्रभु की प्रसन्नता से दुस्तर संसार समुद्र को भी तर जाते हैं—श्रीधृष्टि जी,[1] श्री जयन्त[2] जी, श्रीविजय[3] जी, ये तीनों अतिशय नीतियुक्त, परम पवित्र, तथा शिक्षित और नम्र; श्रीराष्ट्रवर्द्धन[4] जी उभय लोक कृत्यों में परम प्रवीण; श्रीसुराष्ट्र[5] जी अतिशय पुनीत; श्री अशोक[6] जी सदा प्रेमानन्द युक्त; श्रीधर्मपालक[7] जी भगवत तत्त्वज्ञानी; इन सचिवों में

वर्य्य (परम श्रेष्ठ), अपनी बुद्धिविज्ञता सुनीतियुक्तता से चारों युगों के मन्त्रियों को जीतनेवाले श्रीसुमन्त्रजी[८] ॥

१ श्रीधृष्टि जी	५ श्रीसुराष्ट्र जी
२ श्रीजयन्त जी	६ श्रीअशोक जी
३ श्री विजय जी	७ श्रीधर्मपालक जी
४ श्रीराष्ट्रवर्द्धन जी	८ श्रीसुमन्त्र जी

(श्लोक) धृष्टि र्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः ।
÷अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमो महान् ॥ १ ॥
(श्रीवाल्मीकि)÷पाठभेद–"अशोको"

श्रीसुमन्त्र जी ।

श्री ६ सुमन्त्र जी के विवेक, महा विरह, प्रेम, धैर्य्य आदिक गुण, श्री मानस राम चरित से सबको विदित ही हैं । "तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी" ।

(चौपाई) मन्त्रि हि राम उठाइ प्रबोधा ।
"तात ! धरम मत सब तुम्ह सोधा" ॥ इत्यादि ॥

(१/८ २/४ २/२) छप्पै ।

शुभदृष्टि वृष्टि मोपर करौ, जे सहचर रघुवीर के ॥ दिनकरसुत हरि राज, बालि बछ, केशरि औरस । दधिमुख दुविद, मयंद, ऋच्छपति सम, को पौरस ॥ उल्का सुभट, सुषेन, दरी मुख, कुमुद,

नील,नल। सरभ रु, गवै, गवाच्छ, पनस, गँध मादन, अतिबल,। पद्म अठारह यूथपाल, राम काजभट भीरके। शुभदृष्टि वृष्टि मोपर करौ, जे सहचर रघुबीर के ॥ १६ ॥ (२०/२१३)

"भीर"=भीड़; समूह; समीप।

श्रीरामसहचर वर्ग।

वार्त्तिक तिलक।

जगद्विजयी श्रीरघुबीर के संग चलनेवाले जो जो सखावर्ग हौ, सो आप सब मुझ पर कृपा प्रसन्नता युक्त शुभ दृष्टि की बर्षा कीजिये। श्रीदिनेशपुत्रकपि-राजा श्रीसुग्रीव जी, बालिपुत्र श्रीअङ्गद जी, श्रीकेशरी नन्दन हनुमान जी, श्रीदधिमुख जी, श्रीद्विविद जी, श्रीमैन्द जी, और जिनके समान दूसरे का पुरुषार्थ नहीं ऐसे ऋक्ष राज श्रीजाम्बवान जी, परम सुभट श्रीउल्कामुख जी, श्रीसुषेण जी, श्रीदरीमुख जी, श्रीकुमुद जी, श्रीनील जी, श्रीनल जी, श्रीशरभ जी, श्रीगवय जी, श्रीगवाक्ष जी, श्रीपनस जी, अतिशय बली श्रीगन्धमादन जी, इत्यादिक अठारह पद्म यूथ पति; और भी सेना समूह के सम्पूर्ण भट श्रीराम कार्य्य करने वाले भी, मुझपर कृपा दृष्टि की बर्षा कीजिये॥

१ श्रीसुग्रीव जी	१० श्री दरीमुख जी
२ श्रीहनुमान जी	११ श्री कुमुद जी
३ श्री अङ्गद जी	१२ श्री नील जी
४ श्रीजाम्बवान् जी	१३ श्री नल जी
५ श्रीदधिमुख जी	१४ श्री शरभ जी
६ श्रीद्विविद जी	१५ श्री गवय जी
७ श्रीमैन्द जी	१६ श्री गवाक्ष जी
८ श्रीउलकासुभट जी	१७ श्री पनस जी
९ श्रीसुषेण जी	१८ श्रीगन्धमादन जी

महावीर श्रीहनुमान जी।

जब श्रीसीताराम जी राजसिंहासन पर विराजे, और चारो दिशाओं से सब मुनि लोग दर्शन के लिये श्री अयोध्या जी में इकट्ठे हुए, तब प्रभु ने श्री अगस्त जी महाराज से पूछा कि (चौ०) "सौरज, बीरज, धीरज, नीती। बरबिक्रम, दक्षता, प्रतीती॥ तिमि प्रभाव, प्रज्ञता, प्रमाना। हनुमत हिय किय अयन निदाना॥ हनुमत चारु चरित विस्तारा। सुखद सुनाइय मोहिउदारा॥" तथा नैमिष क्षेत्र में ऋषियों ने श्रीसूत जी से पूछा कि (दो०) "एकादश रुद्रहि कहत महाशंभु अवतार। ताकी जग जीवन कथा, कहौ सूत विस्तार॥" इसके उत्तर में—

(सो०) कह अगस्त भगवान, "सत्य कहहु रघुबीर तुम।
नहिँ हनुमान समान, गति मति बलहू में कोऊ ॥"१
कहेउ सूत, "सुख मूल, कहौं चरित्र पवित्र अब।
हरण सकल अघशूल, चित लगाय ऋषि गण सुनौ॥"२

श्रीकेशरीप्रिया शुभव्रतरता परमविनीता श्रीअञ्जना जी एक समय धीरे धीरे विचरती हुईं बन और पर्वत की शोभा देख रही थीं, उसी समय श्रीपवन देव के उद्वेग से आप का वस्त्र उड़ने लगा था; इससे आपने वायु देव पर क्रोध करना चाहा। परन्तु श्रीमरुत देव जी ने कोमलवाणी से आप को, श्रीरामकृपा से श्रीब्रह्मा जी का विचार सुना कर, बहुत कुछ समझाया—

"तूं भयमानहि मति मन माहीं। हम तव तन व्रत हिंसब नाहीं"॥ और "होइहिँ महाबलवान बुद्धि-निधान सुत मेरे दिये। अति तेजमान महान सत्व पराक्रमी ममसम तिये"॥ "बीरज बिलंघन बेगवान सु मोहुतें अधिकाइकै। अस तनय लहि तिहुंलोक तेरो सुयश रहिहै छाइकै॥"

पुनि और और देवते भी आके उसी देशकाल में आप से बोले—

(छन्द)

भय छाड़ि संशय तजौ, चिन्ता त्यागि मन धीरज धरौ।
पिय-त्रास, लोक-विवाद को सन्देह चितसे परिहरौ॥

आए महाशिव गर्भ तव ये देव मुनि चिन्ता हरे।
करि बेगि निशिचर कुल निधन, बिधिधेनु की रक्षा करै॥१॥
मन पवन खग से गति अधिक, पद कंज जे चितलावहीं।
धरि चरण निज सुर सीस पै, साकेत पद नर पावहीं॥
सियनाह सेवा करन हित जग माहिँ यह अवतार है।
सेवै सिया रघुनाथ के पद कंज गुण से पार है॥२॥
(दो०) धर्मशील बिद्या निपुण, सकल कला परबीन।
आचारज ये होयँगे, रहै विश्व आधीन॥"

(सो०) सुर सब भेव जनाय, गए सकल निज २ भवन।
सुनो सजन चितलाय, अग्र कथा भव भय हरन॥
महामरुत की मूल, तेज गर्भ उर धारिकै।
सुख संपति अनुकूल, अंजनि निबसीं गिरि गुहा॥

निदान, शरद ऋतु, कार्तिक मास, कृष्णपक्ष चतुर्दशी, भौम वार, स्वाति नक्षत्र, मेष लग्न, उच्च उच्च स्थानों में सब ग्रह, एवं सर्व योगों तथा समय के सब बिधि अनुकूल होने पर—

(दो०) निशा दिवस के सन्धि में, मुदमंगल दातार।
महाशम्भु परगट भए, हरन हेत भवभार॥१॥
खल अरविन्द विनासकर, सुजन कुमुद आनन्द।
अंजनि उर अंभोधि ते, उदित भए कपिचन्द॥२॥
धन्यधाम अरु धन्यथल, धन्य तात अरुमात।
धन्य वंश जेहि वंश में, जन्मे तिहुपुर त्रात॥३॥

करहिं वेदधुनि विप्रगण, जै जै शब्द विशेष।
सुख समाज तेहिकाल कौ, कहि न सकैं शत शेष ॥५॥

(क०) मङ्गल सु मास, कल कातिक सरद बास, मंगल प्रथम पक्ष, चौदसि सोहाई है। मंगल सु बार, महामंगल नखत स्वाती, संध्या समय, मंगल लगन मेष आई है॥ मंगल सुथल, जल, अनल, सु मंगल भे, अनिल, अकास झरी फूल की लगाई है। मंगल स्वरूप हनुमन्त जन्म मंगल की, बाजै रस रंग जग मंगल बधाई है॥ १॥

भोरे, सूर्य्य को देख, श्रीअंजनीनन्दन, बालभाव से लाल फल अनुमान करके उछले कि रवि को मुखमें रखलें। यह प्रभाव देख, देव दानव सब विस्मयवन्त हुए। रवि के तेज को विचार के श्री पवन देव भी पुत्र के पीछे पीछे शीतलता करते हुए जा रहे थे। एवं, श्रीदिवाकर भगवान ने भी इन्हे श्रीरामकृपापात्र जानकर अपने ताप का लेशभी इनको नहीं लगने दिया।

उसी दिन सूर्य्य ग्रहण का योग था, इसलिये राहु श्रीभानु भगवान के समीप गया। वहां श्रीपवनसुत को देख, भयमान राहु वहां से लौट, सुरेश से जा कहने लगा कि आप ही ने सूर्य्य तथा चन्द्र को मेरा ग्राह्य निर्मित किया। फिर आज आपने मेरा भाग दूसरे को क्यों दे दिया है? यह सुन सुरपति अपने

ऐरावत नाम (स्वेत) हस्तीपर चढ़ के शीघ्रही वहां पहुँचे कि जहां सूर्य्यदेव और मारुती थे ।

श्रीअंजनानन्दन जी राहु को नील फल मान सूर्य्य को छोड़ पहिले तो उसी की ओर लपके, परन्तु ऐरावत को देख स्वेत फल अनुमान कर के, राहु को भी छोड़ ऐरावत ही की ओर लपके । यह देख इन्द्र ने विन बिचारे ही वज्र चलाही तो दिया । राहु के कुसंग का यह फल देखिये । निदान. वह वज्र श्रीप्रभंजनसुत के अंग में आ लगा । उस पविप्रहार से व्यथित हो श्री पवनज जी पर्वत पर आ गिरे, जिस्से आप के बाएं हनु में कुछ चोट पहुँचा । श्रीमरुत देव ने पुत्र को गोद में उठा लिया । कोप करके, सारे जगत से प्रभंजन देवने अपनी गति खींच ली ।

तब तो प्राण के राजा श्री पवन जी के रुकने से, समस्त जीवों को अत्यन्त क्लेश हुआ । सुर मुनि नर नाग गन्धर्व असुर सब के सब, स्वांस उस्वांस प्राण अपान के निरोध से, विकल होगए; शरीर की सन्धियां अति पीड़ित हो गई । कोई कुछ कर्म धर्म करने योग न रहा । देखिये! एक इन्द्र के अपराध से त्रिलोक दुखी हो गया । कुमन्त्र तथा कुसंग से कहां कष्ट नहीं पहुँचता है ?

सब प्रजाओं ने इन्द्र के साथ २ श्रीब्रह्मा जी के

पास जा पुकारा। श्रीबिधाता जी सब को साथ लिये वहां आए जहां श्रीपवन देव श्रीमहाबीर जी को गोद में लिये आप का मुख अवलोकन कर रहे थे। जगत पिता श्रीविधि जी को अपने निकट देखतेही, श्री-मरुतदेवने उठके अपने सीस और प्रियपुत्र दोनों को श्रीविरंचि जी के चरणारविन्द पर रक्खा। प्रभु ने कृपा करके बालक के सीस पर ज्योंही निज हस्तकमल फेरा, त्योंही आप सुखी हो गए; तथा आपकी प्रसन्नता के साथ साथही त्रैलोक्य के प्राणी भी सब सुखी हुए।

श्रीइन्द्र जी ने एक अपूर्व माला श्रीमारुती जी के गले में पहिरा के, और "हनुमान" आपका नाम रख के, आसीस दिया कि अब से मेरे बज्र से इनको कभी कुछ भय नहीं। श्रीगिरिजा पति जी ने भक्ति बर दे अपने शूल से आप को निर्भय किया; तथा, श्रीविधि जी ने निज ब्रह्म स्त्र से, श्रीकुबेर जी ने अपने गदा से, श्रीयम जी ने यमदण्ड से; एवं श्री-दुर्गा जी ने अपने खड्ग से, बरुण जी ने निज पास से; और विश्वकर्म्मा जी ने अपने सर्व आयुधों से अभयत्व दिया। श्रीसूर्य्य भगवान् ने अपने तेज का $\frac{1}{100}$ (शतांश,) अनुग्रह किया; और कहा कि "मैं इन्हें शास्त्र पढ़ा दूंगा"। पुनः, सब ने अनेक विचित्र अद्भुत बरदान आपको दिये, जिनका विस्तित बर्णन कहां तक किया जावे।

(दो०) देखि सुरन के बरन ते भूषित हनुमत काहिं पुनि बोले बिधि पवन प्रति अति प्रसन्न मन माहिँ ॥ (चौ०) यहिके सेवा बस रघुनाथा। यहिके बेगि बिकैहैं हाथा॥ मारुत! तव, यहसुतको पाई। रहिहै सुयश तिहूं-पुर छाई॥ (दो०) अस कहि बिधि अमरन सहित, दै दै बर बरदान। गवने पवनहि पूछि सब, अपने अपने थान॥ १॥ कारण रुद्र अनेक के, "महाशंभु" पर धाम। समय समान स्वरूप करि, सेवहिँ सीता-राम॥२॥ तेऊ प्रभु रुचि पाइकै, प्रबिसे पवन स्वरूप। "अंजनिमारुत-सुत" भए, कपि बपु बिरचि अनूप ॥३॥ गिरि सुमेरु के मुनि सकल, सादर सदन बुलाय। पूजि पगन मेले ललन, भोजन बिबिध कराय॥४॥ तब आनन्दित अंजना, केसरि बसि निज गेह। दम्पति सुतहि दुलारहीं, दिन प्रति सहित सनेह ॥५॥

आप के जन्म के चरित्र, स्वामी श्री ६ रामरस रङ्ग मणि जी प्रणीत "श्रीहनुमत यश तरंगिनी" में, कि जिसको परम प्रसिद्ध महानुभाव सन्तमण्डलभूषण स्वामी श्री ६ "श्रीमतीशरणगोमतीदास" महाराज जी ने छपवाकर अपने श्रीहनुमत निवास से प्रकाशित किया है, तथा श्रीरामनामानुरागी मुन्शी श्रीरामअम्बे सहाय जी कृत श्रीकाशी जी की छपी "श्रीहनुमत जन्म विलास" में भी देखिये॥

श्री मारुती जी के सुयश श्रीवाल्मीकीय में एवं श्रीगोस्वामीतुलसीदास जी कृत जगत विख्यात ग्रन्थों में प्रेमी जन पढ़ते सुन्ते हैं ही ॥ और एक चुटकुला यहां पृष्ठ १०३ में भी देखही आए हैं ॥

(वि०) जयति अंजनी गर्भ अम्बोधिसम्भूत &c.

(दो०) नमो नमो श्रीमारुती, जाके बश श्रीराम।
करहु कृपा निशिदिन जपौं श्रीसियसियपिय नाम॥

श्रीअङ्गद जी।

श्रीसीतारामपदकंज में प्रेम करने ही से लोक परलोक की कोई वार्ता ऐसी नहीं रह जाती जिस्में मतिमान प्रेमी कुशल न हो। श्रीअङ्गद जी, किष्किन्धाधिप बालि के योग्य पुत्र, अपने पिता सम बली ने, लंका की रणभूमि में किस कुशलता से प्रशंसित पराक्रम किये कि जिस्की सराहना स्वयं प्रभु ही श्रीमुख से करते हैं। (चौ०) कह रघुबीर "देखु रण सीता! लछिमन यहां हतेउ इन्द्रजीता॥ हनूमान अंगद के मारे। रन महिं पड़े निसाचर भारे"॥ त्रैलोक्यविजयी रावण की सभा में, कि जहां भयवश इन्द्रादिक देवताओं की बुद्धि क्षोभित हो जाया करती थी, किस उत्साह, दृढ़ता, पराक्रम तथा प्रतीति के साथ अपनी बुद्धि को दरसाया कि लङ्कानिवासियोंने आपको श्री हनुमान जी ही अनुमान किया।

(सवैया)

अति कोप से रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक सशोकित शोर मचा। तमके घननाद से बीर प्रचारिकै, हारि निशाचर सैन पचा॥ न टरै पग मेरु हु ते गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रचा। तुलसी सब शूर सराहत हैं, "जग में बलशालि है बालि बचा"॥

(दो०) रिपु बल धरषि हरषि कपि, बालितनय बलपुंज।
पुलक शरीर नयन जल, गहे रामपद कंज॥

श्रीअवध में आने पर जब सब बिदा होने लगे और आप का अवसर आया, तो यहां रहने के निमित आपका हठ आग्रह एवं विनय करना ही आप के गूढ़ सच्चे प्रेम का यथार्थ चित्र नेत्रों के सामने खींचे देता है॥

(दो०) अङ्गद बचन विनीत सुनि, रघुपति करुणासीव। प्रभु उठाइ उरलाएऊ, सजल नयन राजीव॥१॥
निज उर माला बसन मणि, बालि तनय पहिराइ। बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥२॥

श्रीअङ्गद जी की माता, श्रीतारा जी, जो "पंच कन्या" में से हैं, अतिशय सुन्दरी, बुद्धिमती, पतिव्रता, गुणमयी, तथा श्रीसीताराम भक्ता हैं। इनकी प्रशंसनीय वार्त्ता श्रीबाल्मीकीय में देखने योग्य ही है॥

श्रीजाम्बवन्त जी।

श्रीजाम्बवान जी श्रीब्रह्मा जी के अवतार हैं।

आपकी चर्चा पृष्ठ १०७ में भी हो आई है॥

(दो०) जानि समय सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुखा ते सेवक भए, चतुरानन जँबवान॥

(चौ०) जामवन्त मन्त्री मतिमाना।
अति विजयी बल बुद्धि निधाना॥
नामनिष्ठ अति दृढ़ विश्वासी।
सेतु समय अस बचन प्रकासी॥

(सो०) सुनहु भानुकुलकेतु! जामवन्त करजोरि कह।
नाथ! नाम तब सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिँ॥

श्रीनल जी और श्री नील जी।

(चौ०) नाथ! "नील, नल" कपि दोउ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई॥ तिन्ह के परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥

(सो०) सिन्धु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ। अब बिलम्ब केहि काम, करहु सेतु, उतरै कटक॥

(चौ०) शैल बिशाल आनि कपि देहीं। कन्दुक इव नल नील ते लेहीं॥ देखि सेतु अति सुन्दर रचना। बिहँसि कृपा निधि बोले बचना॥ जे "रामेश्वर" दरशन करिहहिँ। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिँ। होइ अकाम जो छलतजि सेइहि। भक्ति मोरि तेहि शङ्कर देइहि॥ (दो०) श्री रघुबीर प्रताप ते सिन्धु

तरे पाषान। ते मति मन्द जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥

यूथेश्वर दोनों भ्राता नल जी और श्री नीलजी का भी, लङ्का की लड़ाई में श्री कृपा से जो पराक्रम देखने में आया; सो, श्रीबाल्मीकीय में वर्णित और प्रशंस नीय है॥

और, श्री अवधपति राम जी महाराज के सिंहासनस्थ होने पर, "चीन" देशीय राजा, "वीरसिंह" ने अपनी वीरता प्रकट करने के लिये, श्रीराघव से युद्ध (दूत द्वारा) माँगा; तब श्रीराम जी युद्धोन्मुख हुये। उसी समय खड़े हो प्रणाम करके, आज्ञा ले के, निज शत्रुभंजनी सेना सहित श्रीनलनील जी ने चीन पर चढ़ाई की।

वहाँ जाय, रात्रिदिवस पचीस दिन संग्राम करके वीरसिंह का बध किया; और श्रीराम जी की दोहाई फिराई। पुनः शरणागत आने पर, श्रीरामाज्ञा पाके, "बीरसिंह" के पुत्र "इन्द्रमणि" को चीनी राजसिंहासनासीन करके तब श्री नल नील जी, श्रीरामपार्श्व में प्राप्त हुये।

श्रीराघव दया सागर जी उक्त वीरों से अंक भरि भेंटे; और अन्त में निज पद का लाभदे, कृतार्थ किया॥

(१२३/८४१) छप्पय।

ब्रज बड़े गोप "पर्जन्य" के, सुत नीके नव नन्द॥ धरानन्द[१], ध्रुवनन्द[२], तृतिय

उपनन्द[३], सु नागर। चतुर्थ तहां अभि-
नन्द[४]; नन्द[५] सुखसिन्धु उजागर॥ सुठि
सुनन्द[६] पशुपाल, निर्मल निश्चय अभि-
नन्दन। कर्मा[७] धर्मा[८] नन्द; अनुज बल्लभ[९]
जगबन्दन॥ आस पास वा बगर के, जहँ
बिहरत पशुप सुछन्द। ब्रज बड़े गोप
"पर्जन्य" के, सुत नीके नव नन्द॥१७॥ $(\frac{२१}{२३१})$

"बगर"=टोला, पुरवा; फैलाव॥

भिन्न भिन्न ग्रन्थों में, कई नाम भिन्न पाए जाते हैं जैसे "धर्मानन्द" के स्थान में "नन्दन" वा "अभिनन्दन," एवमादि॥
बहुत सी हाथ की लिखी पुरानी प्रतियों को मिला के जो पाठ अधिक पोथियोंमें मिला, सोही लिखा है॥

नवो नन्द जी।

वार्तिक तिलक।

गोकुल (ब्रज) में, (१) सुजन्य जी (२) श्रीपर्जन्य जी (४) अपर्जन्य और (४) राजन्य, ये चारो गोप सहोदर भ्राता थे; तिनमें तीन भाइयों के वंश का तो वर्णन नहीं; पर श्री "पर्जन्य" जी नवो नन्दों के बड़े (नाम वृद्ध पिता) थे; इन्हीं के सुन्दर सुत नवो नन्द जी थे; अर्थात् श्री धरानन्द जी, श्रीध्रुवानन्द जी, तीसरे परम प्रवीण (सुनागर) श्रीउपनन्द जी; तिनमें चौथे

श्रीअभिनन्द जी; और सुख के समुद्र परम प्रसिद्ध महर श्रीनन्द जी। गौओं के विशेष पालक, निर्मल, निश्चय करके प्रभु को आनन्द देनेहारे श्रीसुनन्द जी; श्रीकर्मानन्द जी तथा श्री धर्मानन्द जी; और इन आठों के छोटे भाई जगत में वन्दनीय श्रीवल्लभ जी। जहां गोपाल लोग स्वच्छन्दता से बिहरते थे, तिस नगर के आस पास में नवो नन्द बिराजते थे॥ (मैं उनके चरण की धूरि चाहता हूं)॥

१ श्रीधरानन्द जी,	६ श्री सुनन्द जी,
२ श्रीध्रुवनन्द जी,	७ श्री कर्मानन्द जी,
१ श्रीउपनन्द जी,	८ श्री धर्मानन्द जी,
४ श्रीअभिनन्द जी,	९ श्री बल्लभनन्द जी,
५ श्रीनन्द जी, सुख सिन्धु	पाठ भेद कई हैं॥

जो, श्रीकृष्णभगवान् के ही पिता चचा हैं, भला उनकी बड़ाई कहां तक की जा सकती है॥

(६३४/८४२) छप्पै।

बाल बृद्ध नर नारि गोप, हौं अर्थी उन पाद रज॥ नन्द गोप, उपनंद, ध्रुव धरानँद, महरि जसोदा। कीरतिदा "वृषभानु" कुँअरि सहचरि (विहरति) मन मोदा॥ मधु, मंगल, सुबल, सुबाहु,

भोज, अर्जुन, श्रीदामा। मंडल ग्वाल अनेक श्याम संगी बहु नामा॥ घोष निवासनि की कृपा, सुर नर बांछत आदि अज। बाल बृद्ध नर नारि गोप, हौं अर्थी उन पाद रज॥ १८॥ (२२/२१३)

"आदि अज"=अजादि, विरंचिप्रमुख, विधि प्रभृति, ब्रह्मा आदि। "महरी"=बड़ी, महर की स्त्री। "घोष"=अहिरों का टोला, घोसियों का पुरवा; अहीर, घोसी, ग्वाल, गोप।

गोपवृन्द।

वार्त्तिक तिलक।

जिन घोषनिवासियों (गोप गोपियों) की कृपा को ब्रह्मादिक सुर और नर लोग चाहते हैं, तिन बालक वृद्ध और स्त्री पुरुष गोपों के पाद रज का मैं अर्थी हूं, अर्थात् जांचता हूं। उनमें मुख्यों के नाम–(१) महर श्रीनन्द गोप जी, (२) श्री उपनन्द जी, (४) श्रीध्रुवनन्द जी, (४) श्रीधरानन्द जी, (५) महरी श्रीयशोदा जी, (६) स्मरण मात्र से कीर्ति देनेवालीं श्रीवृषभानु जी की स्त्री श्री "कीर्त्ति" जी, (७) श्रीवृषभानु जी; (८) सदा प्रसन्न आनन्दयुक्त मन वाली सखियों के सहित श्रीवृषभानु नन्दिनी श्रीराधिका जी, (९) श्रीमधु जी, (१०) श्रीमंगल जी, (११) श्रीसुबल जी, (१२) श्रीसुबाहु जी, (१२) श्रीभोज जी, (१४) श्रीअर्जुनगोप

जी, (१५) श्री "श्रीदामा" जी, तथा (१६) श्रीश्यामसुन्दर जी के साथी, अनेक नाम वाले, अनेक ग्वालमण्डलों के पद रज को मैं चाहता हूं ॥

धन्य गोकुल ब्रज; धन्य धन्य वहां के बासी; और धन्य धन्य उन सब की चरणरज ॥

श्रीयशोदा जी ।

महरि श्रीयशोदा जी की कथा श्रीमद्भागवत, सुखसागर, ब्रजबिलास तथा प्रेमसागर प्रभृति ग्रन्थों में अति प्रसिद्ध है। विशेष कुछ लिखने की आवश्यकता क्या है। हरिमाताकी स्तुति क्या कोई साधारण वार्त्ता है ॥

रानीश्रीकीर्त्तिजी; श्रीवृषभानु जी ।

श्रीकृष्णप्रिया जगत जननि सुरमुनिवन्दिता भक्तजन इष्टदेवता "श्रीराधा जी" केही मातु पिता, यही तो सब स्तुतियों की अवधि है; वात्सल्य रस के सुखों की खानि के भाग्य की प्रशंसा और बड़ाई कौन कर सकता है और क्योंकर सम्भव है ॥

श्रीसहचरियां; ग्वाल मंडल ।

प्रिया जी (श्रीराधाजी) की सहचरियों की स्तुति प्रार्थना किये बिन, जो कोई श्रीप्रिया प्रियतम के चरणों की भक्ति चाहे, उसकी बुद्धि अल्प है ।

जिन ग्वालिन तथा ग्वाल मण्डल को भगवान् ने अपना करके जाना माना, और श्रीब्रह्मा ऐसे बड़ों के बड़े ने जिनकी कृपा चाही, उनके चरणसरोज की रज अपने मस्तक पर धरने की बांछा करनी अतिशय बड़भागी का चिन्ह है॥

(१२५/८४२) छप्पै।

ब्रजराजसुवन सँग सदन बन, अनुग सदा तत्पर रहैं॥ रक्तक,[१] पत्रक,[२] और पत्रि,[३] सबही मन भावैं। मधुकण्ठी,[४] मधुवर्त्त,[५] रसाल,[६] बिशाल,[७] सुहावैं॥ प्रेम कन्द[८] मकरन्द[९] सदा, चन्द्रहासा[११]। पयद[१२] बकुल,[१३] रसदान,[१४] सारद,[१५] बुद्धिप्रकासा[१६]॥ सेवासमय विचारिकै, चारु चतुर चित-की लहैं। ब्रजराज सुवन सँग सदन बन, अनुग सदा तत्पर रहैं॥ १९॥ (२३/२१२)

"चित्त की लहैं"=मन की रुचि को समझ जाते हैं॥

श्रीब्रजचन्द्र जी के (१६) षोडश सखा।

वार्तिक तिलक।

ब्रजराजश्रीनन्द जी के पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ साथ घर में और सब बन में ये सब षोडश

सेवक सदा सेवा में तत्पर रहते हैं। (१) रक्तकजी (२) पत्रक जी तथा (३) पत्रीजी, ये तीनों प्रभु के मन में भाते हैं; (४) मधुकण्ठ जी (५) मधुवर्त्त जी (६) रसाल जी (७) विशाल जी, प्रभु को बहुत सुहाते हैं; (८) प्रेमकन्द जी (९) मकरन्द जी (१०) सदा आनन्द जी (११) चन्द्रहास जी; (१२) पयद जी (१३) बकुल जी (१४) रसदान जी (१५) शारद जी और (१६) बुद्धि प्रकाश जी। येसोलहो चारु चतुर अनुग अपनी अपनी सेवा का समय विचार के श्रीनन्दनन्दन जी के चित्त की रुचि को जान लेते हैं, सोई २ सेवा किया करते हैं ॥

इन के भाग्य की बड़ाई किससे हो सकती है ?

(१३६/८४२) छप्पै ।

सप्त दीप में दास जे, ते मेरे सिर ताज॥ जम्बू[१], और पलच्छ[२], सालमलि[३], बहुत राजऋषि। कुश[४], पवित्र, पुनि क्रौंच[५], कौन महिमा जानै लिषि ॥ साक[६] विपुल विस्तार, प्रसिध नामी अति पुहकर[७]। पर्वत "लोकालोक", ओक "टापू कंचनधर" ॥ हरिभृत बसत जे जे जहां, तिन सो नित प्रति काज।

"सप्त द्वीप" में दास जे, ते मेरे सिर ताज ॥ २० ॥ ($\frac{२४}{२१३}$)

"ताज"=टोपी, मुकुट। "ओक"=स्थान, आश्रम।

सप्तद्वीप के भक्त।

वार्त्तिक तिलक।

सातो द्वीपों में, जितने श्री भगवत् दास जहां२ हैं सो सब, मेरे मस्तक के मुकुट हैं। (१) जम्बू द्वीप (२) प्लक्ष द्वीप (३) शाल्मलिद्वीप इन में बहुत से राजर्षि भगवत भक्त हैं; (४) परमपवित्र कुशाद्वीप, तथा (५) क्रौंचद्वीप में जो भक्त समूह हैं तिनकी महिमा जो अनेक पुराणों में लिखी हुई है सो कौन जान सकता है (६) बहुत विस्तारवाला शाकद्वीप और (७) उससे भी अति प्रसिद्ध नामी बड़ा पुष्कर द्वीप; तथा, लोकालोक पर्वत एवं कांचनधर टापू के स्थानों और आश्रमों में जहां जहां जो जो, श्री भगवत के सेवक बसते हैं उन्हीं से नित्य ही मेरा प्रयोजन है; वेही मेरे सीस के मुकुट मणि हैं॥

(चौ०) मोरे मन प्रभु अस विश्वासा।
राम ते अधिक राम के दासा॥

१ जम्बू द्वीप*	५ क्रौंच द्वीप
२ प्लक्ष द्वीप	६ शाक द्वीप
३ शाल्मली द्वीप	७ पुष्कर द्वीप
४ कुश द्वीप	(इति "सप्तद्वीप")

*अपना यह "भारतबर्ष" देश, जम्बूद्वीप ही में है।

प्रथम (जम्बू) द्वीप से, दूसरा दूना है; उससे उत्तर उत्तर दूना। अर्थात् द्वितीय से तृतीय दूना, नाम प्रथम से चौगुना है; एवं चौथा प्रथम से आठ गुना बड़ा है; पांचवां सोलह गुना; छठा बत्तीस गुना; और सातवां (पुष्कर) द्वीप प्रथम (जम्बू) द्वीप से चौंसठ गुण बड़ा है।

☞प्रत्येक द्वीप में शतावधि योजन का एक एक वृक्ष है, सो उसी के नाम से वह द्वीप भी पुकारा जाता है जैसे (१) जामुन, (२) पाकड़ि, (३) सेमर, (४) कुश, इत्यादि का॥

"कांचनधर" टापू तथा "लोकालोक पर्वत," इन सातो द्वीपों से बाहर हैं॥

($\frac{१}{८}\frac{२}{४}\frac{७}{२}$) छप्पय।

मध्य दीप नव खंड में, भक्त जिते, मम भूप॥ इलाबर्त्त,[१] अधीस संकर्षन, अनुग सदा शिव। रमनक,[२] मछ, मनु दास; हिरन्य[३] कूरम, अर्जम इव॥ कुरु,[४] बराह, भू भृत्य; बर्षहरि,[५] सिंह, प्रह्लादा। किंपुरुष,[६] राम, कपि; भरत,[७] नरायन, बीना नादा॥ भद्रासु,[८] ग्रीवहय, भद्रस्त्रव; केतु,[९] काम, कमला अनूप। मध्य दीप नव खंड में, भक्त जिते, मम भूप॥ २१॥ ($\frac{२५}{२१३}$)

"मध्य दीप"=जम्बू द्वीप। "मछ"=मत्स्य, मच्छ, मीन।

"बीनानादा"=श्रीनारदजी॥

जम्बूद्वीप के भक्त।

वार्त्तिक तिलक।

मध्यद्वीप अर्थात् "जम्बूद्वीप" के नवो खण्डों में जितने श्रीभगवत-के-भक्त हैं, वे सब मेरे राजा हैं, (मैं उन सब का सुयशकहनेवाला बन्दी हूं)॥

नवो खण्डों के अधीश्वर भगवद्रूपों के, तथा उनके मुख्य भक्तसेवकों के, नाम कहते हैं। (१) इलावर्त्त खण्ड के अधिपति, भगवान् श्रीसंकर्षण जी हैं, और उनके सेवक श्रीसदाशिव जी हैं; (२) रमणकखण्ड के स्वामी श्रीमत्स्य भगवान् और उनके भृत्य श्री मनु जी (सत्यव्रत); एवं (३) हिरण्य खण्ड के अधीश्वर श्रीकूर्म भगवान्, और उनके दास श्रीअर्यमा जी (४) कुरु खण्ड के पति श्री बाराह भगवान् और उनकी सेवा-करनेवाली श्री भूमि देवी जी; (५) हरिवर्ष खण्ड के स्वामी, भगवान् श्रीनृसिंह जी, और उनके भक्त-राज श्री प्रह्लाद जी; (६) किम्पुरुष खण्ड के महाराज, स्वयं श्रीसीतापतिरामचन्द्र जी; और आप के प्रिय-दास, कपिनायक-श्रीहनुमान-जी हैं; (७) भरतखण्ड के पालक बदरिकाश्रम वासी श्रीनारायण जी, और उनके पुजारी बीणा-नाद-कारी श्रीनारद जू; (८) भद्राश्वखण्ड के ईश्वर श्रीहयग्रीव भगवान्, और उनके सेवक श्री भद्रश्रवा जी; (९) केतुमाल खण्ड के स्वामी श्रीकाम-

देव भगवान्, और उनकी पूजा-करने-वाली उपमारहित श्री कमला जी हैं ॥

गिन्ती	जम्बू द्वीप के नवो खण्ड	अधीश भगवान्	पुजारी
१	इलावर्त्तखंड	संकर्षणभगवा०	सदाशिव
२	रमणक खंड	मत्स्य भगवान्	श्रीमनु जी
३	हिरण्य खंड	कूर्म भगवान्	श्रीअर्यमा जी
४	(उत्तर) कुरु खंड	बाराह भगवान्	श्राभूदेवीजी
५	केतुमाल खंड	कामदेव भगवा०	श्रीलक्ष्मी जी
६	भद्रास्व खंड	हयग्रीव भगवान्	श्रीभद्रश्रवजी
७	हरिवर्ष खण्ड	नृसिंह भगवान्	श्रीप्रह्लाद जी
८	किम्पुरुष खंड	श्रीसीताराम जी	श्रीहनुमान जी
९	भरत खण्ड*	श्रीनारायणजी	श्रीनारद जी

*(अथ देश काल) यह तो विदित है ही कि हम सब इसी खण्ड (जंबू द्वीप भरत खंड) के आर्य्यावर्त्त देश में हैं। भरतखंड को "भारतवर्ष" भी पुकारते हैं; तथा इसी को विदेशी "हिन्दूस्तान्" [هندوستان] एवं "इण्डिया" [India] भी कहते हैं। और यह मन्वन्तर जिसमें हम सब वर्तमान हैं, "वैवस्वत मन्वन्तर" है।

इस मन्वन्तर के अट्ठाईस्वें चतुर्युग का यह "कलि"युग है; जिस्के ४३२००० वर्षों में से केवल प्रथम ही चरण का ५००५ [पाच सहस्र पांचवां] सम्वत्सर, अर्थात् विक्रमी सम्वत १९६१ यह है। अस्तु।

इन्ही श्री वैवस्वत मनुजी के वंश में, "श्री दशरथ चक्रवर्त्ती जी" हुए, जिनके पुत्र हो स्वयं साकेत विहारी शार्ङ्गधर श्रीसीतापति रामचन्द्र महाराज जी प्रगट हुए हैं।

५८ वें पृष्ट प्रथम छप्पै (पाचवें मूल) में, ग्रन्थकर्त्ता स्वामी मन्वन्तरों की बन्दना कर आए हैं, जिन में से श्रीवैवस्वत मनुजी [वर्त्तमान] की बन्दना, आप इस आठवीं षटपदी नाम बारहवें मूल [पृष्ट २५९] में करते हैं ॥

इसी (किम्पुरुष) खण्ड ही में महारानी श्रीमिथिलेशलली जी की, तथा श्री जानकी जीवन जी की सेवा, श्रीसीताअंजनीदुलारे जी कई ("कपिमहावीर," "श्रीरामदूत," "श्रीमारुतिबीर कला," श्रीचारुशीला," इत्यादिक,) रूप से सदैव करते हैं । एवं, वहीं, मुमुक्षु जनों को श्रीकेशरीनन्दन कपीश जी, श्रीरामायणीय कथा और श्रीसीतारामाराधन सिखला के मुक्त कराते हैं ॥

(१२८/८४२) छप्पय ।

स्वेत दीप में दास जे, श्रवण सुनो तिनकी कथा ॥ श्रीनारायण (को) बदन निरन्तर ताही देखैं । पलक परै जो बीच कोटि जमजातन लेखैं ॥ तिनके दरशन काज गए तहँ बीणाधारी । श्याम दई कर सैन उलटि अब नहिं अधिकारी ॥ नारायण आख्यान दृढ़, तहँ प्रसंग नाहिन तथा । स्वेत द्वीप में दास जे, श्रवण सुनो तिनकी कथा ॥ २२ ॥ (२६/२१३)

वार्त्तिक तिलक ।

"श्वेतद्वीप" में जो श्रीभगवान् के दास बसते हैं, तिनकी कथा कान लगा के सुनिये । वे दास, श्वेत-द्वीप वासी श्रीमन्नारायण के मुखचन्द्र को सदा देखाही करते हैं, और नेत्रों में जो पलक पड़ते हैं उस अन्तर को कोटिन यमयातना के सरीखा दुःख मान्ते हैं ।

उन भगवत-दर्शनानन्द-निष्ठों के दर्शन तथा ज्ञानो-पदेश करने के हेतु बीणाधारी श्री नारद जी गए; तब श्रीमन्नारायण जी ने श्रीनारद जी के मन की रुचि जान के, हाथ के सैन से निवारण किया कि "आप उलटे पांव फिर जाइये, ये हमारे रूप-माधुरी-के-निष्ठ लोग आपके ज्ञानोपदेश के अधिकारी नहीं हैं ॥"

नारायण के रूपाशक्ति प्रेमाभक्ति का आख्यान जैसा वर्णित है सोही वहां के भक्तों को भली भांति दृढ़ है । जैसी अन्यत्र के भागवतों की ज्ञानमिश्रा भक्ति में प्रवृत्ति है, वैसा प्रसंग श्वेतद्वीप में नहीं है, वहां वाले तो केवल शुद्ध माधुर्य्य रूप के ही उपासक हैं ॥

श्वेतद्वीप के भक्त ।

(३२१/८४२) टीका कवित्त ।

श्वेतदीप वासी, सदा रूप के उपासी; गए नारद बिलासी, उपदेश आसा लागी है । दई प्रभु सैन जिनि

आयो इहि ऐन, दृग देखैं सदा चैन, मति गति अनुरागी है॥ फिरे दुख पाइ, जाइ कही श्री बैकुण्ठनाथ, साथ लिये चले लखो भक्ति अंग पागी है। देख्यो एक सर, खग रह्यो ध्यान धरि, ऋषि पूछैं कहो हरि, कह्यो "बड़ो बड़भागी है" ॥ १०३ ॥ (६२९—५२६)

वार्तिक तिलक।

श्वेतद्वीप के बासी भक्त जन सदा श्री भगवत रूप ही के उपासक हैं; वहां एक समय ज्ञानोपदेश करने की आसा करके सत्संगविलासी श्रीनारद जी गए; उनके मन की गति जान के प्रभु ने सैन से आज्ञा की कि "इस स्थान में मत आओ, क्योंकि ये भक्त हमारे रूप अनूप ही को देख कर परम आनन्द मानते हैं, और रूपही के अत्यन्त अनुरागी हैं, इनको अब ज्ञान उपदेश का प्रयोजन नहीं है"।

यह सुन, उदास हो के, श्रीनारद जी फिरे, और श्रीबैकुण्ठनाथ भगवान् के हां जाके सब वार्त्ता निवेदन की। भगवान् बोले कि ठीक तो है; और, उनको अपने साथ ले चल के कहा कि "चलो, हम दिखादें कि, यथार्थ में उन भक्तों के अंग अंग रोम रोम सब प्रेम भक्ति से पगे हैं"।

दोनों श्वेतद्वीप में पहुँचे। वहां एक सरोवर में एक भक्त पक्षी प्रभु का ध्यान धरे हुए बैठा था; देख

के श्रीनारद जी ने श्रीबैकुण्ठनाथ जी से प्रश्न किया कि प्रभो ! यह खग ऐसा शान्त क्यों बैठा है ?" श्री हरि ने उत्तर दिया कि "यह भक्त खग अति बड़भागी है" ॥

(१/८ ३/४ ०/२) टीका । कवित्त ।

वर्षहजार बीते, भए नहीं चित चीते, प्यासोई रहत, ऐपै पानी नहीं पीजिये । पावै जो प्रसाद जब जीभ सो सवाद लेत, लेत नहीं और, याकी मति रस भींजिये ॥ लीजै बात मानि, जल पान करि डारि दियो, लियो चोंच भरि, दृग भरि बुधि धीजिये । अचरज देखि, चष लगै न निमेष किहूं, चहूं दिशि फिर्यो; अब सेवा याकी कीजिये ॥ १०४ ॥ (६२९—५२५)

"नहि चित चीते"=चित चिन्ता नहीं; ध्यान न दिया । "निमेषन लगै"=एक टक । "चहूँ दिशि फिरि"=परिक्रमा करके ।

वार्त्तिक तिलक ।

"नारद ! देखो, इसको एक सहस्र (१०००) वर्ष बीत गए, इसके चित्त में चिन्ता नहीं, यह इतने दिनों से प्यासा ही रहता है परन्तु जल नहीं पीता, केवल मेरे ध्यानामृत ही से जीता है; क्योंकि जब यह मेरा प्रसाद पाता है तबही जीभ से खानपान का स्वाद लेता है; इसकी मति भक्तिरस में ऐसी भीग गई है कि प्रसाद बिना और वस्तु का ग्रहण ही नहीं करता । मेरी इस

बात को सत्य मानो; देखो, मैं प्रसाद करके जल इसको देता हूं, उसको पियेगा"। प्रभु ने आप जल पीके प्रसाद उसके आगे रख दिया, तब तुरन्त ही उसने भर चोंच पान कर लिया; प्रेमानन्द का जल भी उसकी आंखों में भर आया तथा मति प्रसन्नता से पूर्ण हो गई।

(श्लोक) यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
ते त्वघं भुञ्जते पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥
(भ० गी० ३।१३)

वैष्णवे भगवद्भक्तौ प्रसादे हरिनाम्नि च।
अल्पपुण्यवतां राजन् बिश्वासो नैव जायते॥

इस आश्चर्य भक्ति को देख के श्रीनारद जी के नेत्रों में किसी प्रकार से निमेष नहीं पड़े उसकी ओर देखतेही रह गए; फिर चारो ओर फिर करके उसकी प्रदक्षिणा की। और प्रभु से बोले कि "मेरा तो जी चाहता हैकि मैं इसकी सेवा किया करूं॥"

(१३१/८२४) टीका कवित्त।

चली आगे देखौ, कोऊ रहै न परेखौ; भाव भक्ति करि लेखौ; गए द्वीप; हरि गाइये। आयो एक जन धाई, आरती समय बिहाई, खैंचि लिये प्राण, फिरि बधू याकी आइये॥ वही इन कही, पति देख्यो नहीं, मही पर्यो; हर्यो याको जीव, तन गिर्यो; मन भाइये। ऐसै,

पुत्र आदि आए, सांचे हित में दिखाए, फेरिके जिवाए, ऋषि गाए चित लाइये ॥ १०५ ॥ (६२९—५२४]

"परेखौ"=जांच, परचो, परीक्षा। "लेखौ"=लेखा करो, मानो, गिन्ती में लाओ ॥

वार्त्तिक तिलक।

यह सुन श्री भगवान् बोले कि "चलो, अभी आगे और देखो; कोई परीक्षा रह न जाय, जिस्में उन भक्तों की सब दशा देख के तुम भावपूर्वक उनकी भक्ति को लेखा में लाओ" यों बातें करते हुवे, उस (श्वेत) द्वीप के मध्य मन्दिर में दोनों गए, कि जहां सब भक्त लोग हरि के गुण और नाम ही प्रेम से गा रहे हैं।

देखते क्या हैं कि एक आर्ती दर्शन का नेमी दौड़ता हुआ आया परन्तु आर्ती का समय बीत गया था। आर्ती का दर्शन न पाने के बिरह से उसने प्राण को खीचके छोड़ ही दिया।

उसके पीछे ही उस्की धर्मपत्नी भी आई और पूछने लगी कि क्या आर्ती हो गई? आपने कहा कि हां, होगई बरन् तेरे पति को भी दर्शन नहीं हुआ! देख, प्राणत्याग के धरती पर गिरा पड़ा है। आर्ती बिरह ने इस्के भी प्राण हर लिये, उस्का भी मृतक शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इन दोनों का नेम प्रेम देख प्रभु के और नारदजी के मन में यह अत्यन्त भाया।

इसी प्रकार से, उनके पुत्रादि सब आए और आर्त्ती के दर्शन विना प्राण त्याग त्याग गिर गिर पड़े।

इस भांति, प्रभु ने इन सच्चे भक्तों का प्रेम नेम नारद जी को दिखाया; जिस्से श्रीनारद जी का प्रबोध हुआ।

पुनः जब आर्त्ती होने लगी तो उस समय प्रभु ने उन सब को सजीव कर आर्त्ती दर्शन का आनन्द दिया।

यह आख्यान, श्वेतद्वीप माहात्म्य में ऋषियों ने गाया है। इनके प्रेम भक्ति में सब को चित लगाना चाहिये॥

($\frac{११२}{८४१}$) छप्पय।

उरगअष्टकुल द्वारपाल सावधान हरि-धाम थिति॥ इला पत्र,[१] मुख अनन्त[२] अनन्त कीरति विसतारत। पद्म,[३] संकु,[४] पन प्रगट ध्यान उरते नहिं टारत॥ अशुकम्बल,[५] वासुकी,[६] अजितआज्ञा अनु-बरती। करकोटक[७] तक्षक[८] सुभट सेवा सिर धरती॥ आगमोक्त शिव संहिता "अगर" एकरस भजन रति। उरग अष्टकुल द्वार पाल सावधान हरिधाम थिति॥२३॥ ($\frac{२७}{२१२}$)

"श्वेत द्वीप" को भूमंडल पर एक वैकुण्ठ ही जानिये ॥

पृष्ठ ३३१ (श्रीयाज्ञवल्क्य जी)। १८।१९ वीं पंक्ति में "एक मुनि" के स्थान में "सूर्य्यनारायण," और "वह मुनि" की जगह "सूर्य भगवान्" भूल है। चाहिये कि-"आप ने पहिले किसी एक मुनि से विद्या पढ़ी किसी कारण से वह मुनि अप्रसन्न हुए तो इनने सब विद्या उगलदी। यह प्रभाव देख प्रसन्न हो, श्रीसूर्य नारायण ने आप को विद्या तथा बरदान दिया इ०. इ०.॥"

अष्टकुल नाग।

वार्त्तिक तिलक

इन अष्टकुली महासर्पों की श्रीभगवत के धाम में स्थिति है, श्रीहरि मन्दिर के द्वार पालक हैं, और निज निज सेवा में सदा सावधान रहते हैं—

(१) एलापत्र जी और (२) अनन्त (शेष) जी, अपने मुखों से श्री अनन्त (श्रीभगवान्) की कमनीय कीर्त्ति विस्तारपूर्वक सदा वर्णन करते हैं। (३) पद्मजी तथा (४) संकुजी की प्रतिज्ञा (पन) प्रगट है कि श्रीप्रभु के स्वरूप का ध्यान निज हृदय से क्षणमात्र नहीं टारते हैं (५) अशुकम्बल जी और (६) वासुकी जी श्रीअजित महाराज की आज्ञा के सर्वदा अनुवर्त्ती रहते हैं। (७) कर्कोटक जी तथा (८) तक्षक जी ये दोनों सुभट श्रीप्रभु की सेवा रूपा भूमि अपने सीसपर निरन्तर धारण किए रहते हैं।

स्वामी श्रीअग्रदेव जी कहते हैं कि यह शिवसंहिता तंत्र (आगम) में कहा गया है, ये अष्टकुली महानागों

की श्रीभगवत के भजन में सदा एक रस प्रीति (रति) रहती है ॥

(श्लोक) " * * * * * ।

तेषां, प्रधानभूतास्ते, शेष,[1] वासुकि,[2] तक्षकाः[3] ॥१॥
शंखः,[4] श्वेतो,[5] महापद्मः[6] कम्बला[7]श्वतरौ[8] तथा ।
एला पत्र,[9] स्तथा नागः,[10] कर्कोटक,[11] धनंजयौ[12] ॥२॥

[विष्णु पुराण, अंश १, अध्याय २१]

इनकी चर्चा "श्रीरामतापनीयोपनिषद्" में भी है ॥

१. एलापत्र	७. कर्कोटक
२. अनन्त [शेष]	८. तक्षक
३. महापद्म	९ धनंजय
४. अश्वतर	१० नाग
५. कंबल	११ श्वेत
६. वासुकि	१२ शंख

प्रिय पाठक ! आप सब धर्मशीलों के गृह गृह सब यज्ञादिकों में पुरोहित लोग अवश्य ही "अष्टकुली नाग" की (और २ देवतों के समूह में) पूजा करते कराते हैं; वे नाग ये ही हैं जिनकी बन्दना प्रार्थना श्रीग्रन्थकार स्वामी श्रीभक्तमाल के इस पूर्व खण्ड के अंत में कर रहे हैं ।

अंत में इसलिये कि ये "द्वारपाल" हैं; इनकी कृपा बिन भीतर प्रवेश नहीं हो सकता; भीतर जाने

वाले को प्रथम आपही की कृपा की आवश्यकता होती है ॥

चित्र मय तथा मन्त्रमय "श्रीयन्त्र राज" * का दर्शन अवश्य कीजियें, देखिये कि यन्त्र कोट के बाहर ये द्वादश उरग कैसे शोभते विराजते हैं।

---:o:---

* श्रीअयोध्या जी में यन्त्रराज जी अनेक ठिकाने नित्य पूजे जाते हैं श्रीकनकभवननिवासी परमहंस श्रीसीताशरण जी महाराज के पास, तथा इन्ही की कृपा से छपरे के वकील श्रीजानकी नगर निवासी बाबू दुर्गा प्रसाद जी के पास जो श्रीयन्त्र राज जी हैं, अवश्य दर्शनीय हैं ॥

श्रीयन्त्र राज जी के भीतर वे हरिबल्लभ लोग कई (सात) आवृत्तियों में विराजते हैं कि जिनकी बंदना तथा यशकीर्त्तनादि ऊपर, चार दोहों, २३ छप्पयों, और १०५ कवित्तों (प्रायः चार सौ पृष्ठों) में वर्णित हैं; सब के बीच में श्रीयुगल सर्कार विराजमान हैं।

"धन्यते नर यहि ध्यान जे रहत सदा लवलीन" ॥

अनुमान से ऐसा भी निश्चय होता है कि यह छप्पै (षट पदी) "अपने गुरुस्वामी श्रीअग्रदेव जी" कृत, श्री नाभास्वामी जी ने अति मंगल जान के यहां स्थापन किया है, जैसे पृष्ठ ५८ की प्रथम षटपदी (मूल ५) को भी ॥

☞ "बाल मराल कि मन्दर लेहीं ॥"

प्रार्थना। श्री "भक्तिरसबोधिनी" की भाषा समझना कठिन है तिसपर भी उसका तिलक करना इस अबोध

बालक के लिये विशेषतः क्लिष्टतर है। परन्तु जो कुछ बड़ों से पढ़ा सुना उसमें से संतों की कृपा से जो कुछ मति अनुसार हो सका सो, परम प्रेमी श्रीबलदेव नारायण सिंह जी की अतिशय आग्रह से, लिख कर पाठकों के कर कमल में निवेदन कर रहा हूं। चूक क्षमा करके, कृपा पूर्वक सुधार लिया जावे, भक्तिवर दिया जावे ॥ यही विनय पुनः पुनः ॥

(दोहा) नमो नमो श्रीमारुती, जाके बश श्रीराम ।
करहु कृपा निशि दिन जपों, श्रीसियसियपिय नाम ॥ १ ॥
भक्त भक्ति भगवंत गुरु, चतुरनाम, बपु एक ।
पुनि पुनि पद बंदन करौं, बिनशै विघ्न अनेक ॥ २ ॥
(श्लोक) श्रीरामं, रामभक्तिं च, रामभक्तांस्था गुरून् ।
वाक्काय, मनसा, प्रेम्णा, प्रणमामि पुनः पुनः ॥

इति श्रीभक्तमाल "सत्ययुग त्रेता और द्वापर के भक्तों का वर्णन" नाम पूर्वनामावली समाप्ता ॥ शुभमस्तु ॥

श्रीसीतारामार्पणम्

॥ श्रीहनुमते नमः ॥

संम्बत् १९६१ सन् १९०४ श्रीअयोध्या प्रमोदवन ॥

श्रीजानकी सियाबर सप्तक।

(सवैया)

चेतन-आनँद-विग्रह शक्ति, अहो अहलादिनि राम-पियारी! सेवित-अम्बुज-अङ्घ्रि सुसिद्ध-अजादिक-देव हरी-मदनारी ॥ स्थित-उद्भव-लय-करनी, हरनी जन शोक, विदेह-कुमारी। नासु कलेश सबै, सिय! स्वामिनि! 'गोप्य अली' *अहै चेरि तिहारी ॥ १ ॥

जौ लगि जीव न ह्वै शरणागत तेरी, रहै तबलागि दुखारि। क्यों न करै बरु जोग जपादिक कोटिन बर्ष, न होय सुखारी ॥ ज्ञान विराग सुकर्मन ते, तव नेह बिना, नहिँ रीझ खरारी। नासु कलेश सबै, सिय! स्वामिनि! गोप्य अली अहै चेरि तिहारी ॥ २ ॥

जो प्रभु कोटिन-अंडन-ईश, परेश, अनीह, अनाम, अघारी। जो मन-गो-बुधि-चित्त-अगम्य, कहैं यश वेदन जासु पुकारी ॥ सो लखि तेरी कृपा, जेहि पै, बिकिजाहिँ तेही कर में, असुरारी। नासु कलेश सबै, सिय! स्वामिनि! गोप्य अली अहै चेरि तिहारी ॥३॥

*ग्राम अपहर, जिला सारन छपरा ॥

सौ सुरबर्षन लौं शिवजू किय जाप मिले गुरु रूप खरारी । बोले "चहौ मम रूप हि प्राप्ति, अराधहु तौ मिथेलेश कुमारी ॥" कीन्हो जबै तुम्हरो अवराधन, तौ भे सुखी प्रभु नैन निहारी । नासु कलेश सबै, सिय! स्वामिनि! गोप्य अली पिय! चेरि तिहारी ॥ ४ ॥

तेतिस शक्ति रहै वसु जाम निहारत भ्रू तव आयसु कारी । ह्वै गुणखानि अनेकन, तेरेइ अंश ते, लक्ष्मि, गिरा, शिवनारी ॥ ऐसेहु पाइ प्रभुत्त, करौ निज हस्तहि सेवन पी, सुकुमारी । नासु कलेश सबै, सिय! स्वामिनि! गोप्यअली पिय! चेरि तिहारी ॥ ५ ॥

हौ पतिव्रत्तशिरोमणि, सुन्दरि, प्रीतमजीय हिँ आनँदकारी । रूप-छवी-गृह! अंगन पै, रति कोटिन कोटिन ह्वै बलिहारी ॥ जो तव नाम जपै अरु ध्यान धरै, तेहि वस्य रहैं धनुधारी । नासु कलेश सबै, सिय! स्वामिनि! गोप्यअली पिय! चेरि तिहारी ॥ ६ ॥

तेरेइ चाहते व्यापक व्यूह बिभू अरु अर्च प्रभू तनु धारी । आइ बहोरि स्वयं, युत अंश, भुमंडल माहिँ चरित्र पसारी ॥ तारे अनेकन पापिन जीव सबै तुम्हरी कृत पावन कारी । नासु कलेश सबै सिय! स्वामिनि! गोप्यअली पिय! चेरि तिहारी ॥ ७ ॥

———:o:———

द्रौपदि लाजहिँ राखि लियो प्रभु, बीचसभा जब "पाहि"

पुकारी। चीरबढ़ाइ कियो गिरि से, नहिँ होन दियो कुछ देह उघारी॥ जाहि रह्यो बल मत्त सहस्र दिशाकरि, सो गयो खैंचत हारी। सो किय काहे बिलम्ब सियाबर! गोप्यअलीप्रभु! बेरि हमारी॥१॥ ग्राह ग्रस्यो मुख से जब ही पग सिन्धुर को सर बारि मँझारी। कीन्हेउ रारि बड़ो पुनि थाकेउ, आरत ह्वै तब, तोहि पुकारी॥ धाय सहाय भयो प्रभु बेगिहि, ग्राहहिँ मारिके, कीन्ह सुखारी। सो किय काहे बिलम्ब सियाबर! गोप्यअलीप्रभु! बेरि हमारी॥२॥ * (*अपहर, सानर)

भारत होत जुट्यो जब सैन, दुहूं दल होन लगी अति रारी। बीच मही रण, अण्ड रहे भरदूल के, रक्षहि हेतु बिचारी॥ तापर घंट गिराय दियो गज को, मरते लिय नाथ उबारी। सो किय काहे बिलंब सियाबर! गोप्यअलीप्रभु! बेरि हमारी॥३॥ लैकर खड्ग भयो जब उद्यत मारनको प्रहलाद सुरारी। धारि स्वरूप हरीनर को, प्रगट्यो प्रभु बेगिहि खंभहि फारी॥ मारि हिरन्य कशीपु, शरीर बिदारि, कियो निज दास सुखारी। सो किय काहे बिलम्ब सियाबर! गोप्यअलीप्रभु! बेरि हमारी॥४॥

मारिकेलात विभीषण को जब रावण धामते दीन्ह निकारी। त्यागि तबै सब, आरत ह्वै, शरणागत आएउ नाथ! तिहारी॥ मीस बनाइ, दियो गढ़ लंक क राज

दशानन दुष्टहि मारी। सो किय काहे बिलम्ब सियाबर! गोप्यअलीप्रभु! बेरि हमारी ॥ ५ ॥ कीश सुकंठ बसे गिरि त्रासित, बन्धु निकारि दियो बहु मारी। दर्स दै ताहि, मइत्रि कियो, पुनि बालि महा बलसालि सँहारी ॥ राज बिठाय सुग्रीवहि सौंपि सबै धन कोश चमू पुर नारी। सो किय काहे बिलम्ब सियाबर! गोप्य-अलीप्रभु! बेरि हमारी ॥ ६ ॥ संकट जाहि पस्यो जबही शरणागत ताकेउ दीन पुकारी। नाशि कलेश तबै तेहिके, सबभांति किये, गुनि दास, सुखारी ॥ आरति-भंजन दीन दयाल कही श्रुति सन्तन बानि तिहारी। सोकिय काहे बिलम्ब सियाबर! गोप्य अली प्रभु! बेरि हमारी ॥ ७ ॥ (गोप्यअली, अपहर, सारन)

इति श्रीजानकी सियाबर सप्तक ॥

(सवैया)

कौशिकि, गंडकि, गंग, हिमाचल, मध्यहि श्री मिथिलेश जिला है। "श्री कमला," सिलनाथ, जलेश्वर, श्री "गिरिजा," बिच धाम किला है ॥ "कुंड विहार," सु "सागर रत्न," विलोकि, मणी रस रंग खिला है। श्रीसिय की प्रिय जन्मथली, रघुनंदन मोदकरी "मिथिला" है ॥

श्रीअयोध्या कनक भवन निवासी परमहंस श्री ६ सीताशरण महाराज जी के शिष्य, टांडा निवासी

कवीश्वर पण्डित श्री रामगयाप्रसाद जी वेदान्ती–

(क०) यमन, अजामिल पै नाम की उदारता औ, रूप ने अनुग्रह देखाई मिथिला में आय। गौतम तिया तें पद रज की प्रशंसा सुनी; नैन, बैन, धूम "सिद्धि" श्रैन मे दियो मचाय ॥ शरण सुरच्छता विभिषन पै देख लीजै; शरन ने* (*बाणों ने) निशचरन पै कृपा करी अघाय। भक्तवतसलता निषाद को निरखि धाई; दीन पै दया की कथा शेषहू न सकैं गाय ॥ १ ॥

लोकपरलोक के हितार्थ यद्यपि शास्त्रकारों ने अनेक यत्न लिखे, जिसको संसार में प्रायः मनुष्य करते ही हैं; पर बिरह रूपी बान से चोट खाये हुये प्रेमियों के अन्तःकरण में जो निश्चय हुआ, उसका चित्र श्री ६ गोस्वामी जी यों खींचते हैं कि (दो०) "स्वारथ परमारथ सुलभ, सकल एकही ओर। तुलसी उचित न दीनता द्वार दूसरे लोर॥". दूसरे द्वार पर न आकर केवल एकही स्थान पर उभय लोक के कुशल की आकांक्षा करने में जिस परिश्रम की आवश्यता है, उसके हेतु पूर्व और उत्तर-मीमांसा आदि के यत्न कदापि हितैषी न प्रतीत होकर सुगमतर और सर्व सुखदायक उपाय जो जान पड़ा, वह "भक्ति" ही है।

२. समस्त सद्गुण सागर होने पर भी, सूक्ष्म दर्शी महात्मा श्री प्रिया दास जी, अपने शुद्ध अन्तःकरण का अनुभव यों प्रकट करते हैं, कि "बिना भक्तमाल भक्तिरूप अति दूर है"

३. सच तो है कि बिना प्रेमियों की रीति और कर्त्तव्य जाने हुये, प्रेम विश्वास और दीनता का पताही नहीं चलता; और जब तक प्रेम नहीं होता और अभिमान नहीं जाता, तबतक श्रीराजीवलोचन सर्कार कृपा कोर से देखतेही नहीं; और जीव तबही तक बहका२ फिरता है कि जब तक कृपाकर प्रभु की तिर्छी चितवन उसपर नहीं पड़ती। इधर प्रेम का अंकुर निकला कि उधर न जानें कहां से और किस चितवन से आपने देखा; जहां आपने दृष्टी की, वहां चतुराई मान बड़ाई चौपट हुई, ज्ञान ग़ोते खा गया, बुद्धि के कोमल हस्त जो बिधि निषेध रूपी कठिन रज्जु से बँधे हुये थे, तुरत अलग हो गये, चित्त पर चाह ने अपना चौकस पहरा जमा दिया॥

४. अब अपर साधनों में वृथा परिश्रम की आवश्यकता कहां तक रह-गई, विचार करने से स्वयम् ही प्रतीत हो जावेगी। जब यह निश्चय हो गया कि स्वार्थ और परमार्थ दोनों की सुलभता में "भक्ति" से सुगमतर कोई नहीं, और वह बिना "भक्तमाल" प्राप्त होही नहीं सकती, तो अब भक्तमाल की चाह हुई।

"भक्तमाल" यद्यपि भाषाही है, तथापि उसका बोध कठिन प्रतीत होता है॥

(चौ०) हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥

५. परहित परायण श्री प्रियादास जी ने प्रथम उसके विस्तार करने पर कटिबद्ध होकर "भक्ति रस बोधिनी" नामक टीका रची। श्री नाभा स्वामी ने जिन महात्माओं का केवल नामही वर्णन किया था, नाना पुराणों से बहुतों का यश और श्री युगल सरकार के चरणारविंद में उनकी अलौकिक प्रीति दरशा कर, श्री प्रियादास जी ने भक्तमाल की चाह को और तीक्ष्ण कर दिया। इस टीका से अवश्यही बहुत प्रकाश तथा उपकार हुआ। श्रीप्रिया दासजी की जय॥

६. उनके उत्तरोत्तर और कई प्रेमियों ने परिश्रम किया और उनका श्रम सफल भी हुआ। (पृष्ट ३९ देखिये)

किया क्या इन महानुभावों ने कि, किसी ने तो मूल लिखकर जहां तहाँ टिप्पनी (नोट) लिखी; और किसी ने अपने आनन्द की तरंग में आकर श्री भक्तमाल की काया पलट दी, कि उसका और ही रंग रूप होगया। एवं, दोहा चौपाई, उरदू, फारसी, संस्कृतादि में, श्री भक्तमाल जी के कितने रूप धारण कराये गए; इसके कहने की बहुत आवश्यकता नहीं। अपने अपने ढंग में वे सब अच्छे हैं।

यह सब तो रामकृपासे हुआ, पर यह अभी तक न हुआ कि जिसको देख कर, कोई भक्तमाल को विचार कर उसका वास्तविक आनन्द ग्रहण कर सकता; कठिनता की झलक ज्यों की त्यों बनी ही रही—अब इधर तो वर्तमान काल के प्रेमियों के प्रेम और उधर भक्तवत्सलता बिरद

दोनों को, एक ऐसे रसिक की आवश्यकता हुई कि जो अपने प्रेम में से किंचित आनन्द औरों को भी अर्पण कर सके । फिर क्या था प्रेमियों के शुद्ध अंतःकरण में विशेष रूप से बास करने वाले प्रभु ने, अपने एक कृपा पात्र के कर कमल में बिचित्र लेखनी देकर इस अपूर्व कार्य पर उद्यत करही तो दिया—

१. जैसी कठिन रास्ता थी वैसेही "भक्ति सुधाबिन्दु स्वाद" के रसिक तिलककार ने किसी का साथ न देकर अपनी अलगही राह निकाली और वह सीधा पथ भी कैसा कि जिसपर चलने से श्रीराम कृपा से फिर कठिनता से भेंटही न हो । सूक्ष्म बिचार से तिलककार ने निस्सन्देह आवश्यकीय कार्य किया है, कि श्री नाभा जी का मूल और साथही साथ श्री प्रियादास जी की टीका और फिर सरल भाषा में दोनों का भावार्थ; ठौर ठौर पर भाषा और संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाण के साथ, कि जो अन्तःकरण से मोह की जड़ को उखाड़ कर भक्तमाल के मूल को जमा दे, बर्णन किया है ।

सुगमता और सरलता को देख कर शुद्धता ने भी पूरा साथ दिया। मूल दोहे, छप्पै और कवित्तों के भावार्थ के अतिरिक्त प्रायः कठिन शब्दों के अर्थ भी लिख दिये हैं । चौथे कबित के अर्थ में भक्ति पंच रस का बशीकर यन्त्र देख कर अन्तःकरण अपना तन्त्र मंत्र भूल ही जाता है । —यह तिलक, रसिक के रस का भी पता बताता है । प्रथम ही श्री बैष्णव नामावली, सन्तों के चरणारबिन्द में तिलककार की प्रीति प्रतीत और सतसंग की व्यवस्था बताए देती है ।

छठे मूल अर्थात् द्वितीय छप्पै के तिलक में श्री चरण चिन्हों का बर्णन महारामायण आदि ग्रंथों के अनुकूल कैसा विचित्र यंत्रों में दर्शाया है कि जिसको करतल गत आमलक ही सा कहना चाहिये- ॥ रसिक तिलककार जी ने एक सराहनीय कार्य्य यह भी किया है कि प्रत्येक छप्पै और कवित के साथ ऐसा अंक लगा दिया है कि जिससे सर्वत्र शीघ्रही यह निश्चय हो सकता है कि मूल में से केतने हो चुके और केतने अब शेष रह गये हैं,

जैसे ३६९ वें पृष्ठ के २३ वें छप्पै के साथ $\frac{1}{8}\frac{3}{4}\frac{2}{2}$ अंक लिखा है; इससे यह जाना जाता है कि १३२ हो चुके और समस्त ८४२ हैं जिन में से अब ७१० बाकी रह गए ।

अद्भुत, रमणीय और हितकारी होने पर भी, कठिनता के कारण से श्रीभक्तमाल का सर्व साधारण में कम प्रचलित होना ही किसी अनोखे तिलक की आवश्यकता पुकार रहा था ।

८. श्रीमणिराम छावनी में इन दोनों योग्य पंडित श्री शिवराम शर्म्मा भक्तमाली जी की अपूर्व कथा, भूले हुए भक्तमाल को अनेक सन्तों के हृदय में ऐसा स्मरण दिला रही है कि श्री राम कृपा से अब इसके वियोग का कम भय होता है ॥

९. सराहनीय उत्साह तो श्रीसीतामढ़ी बुलाकीपुरनिवासी बाबू बलदेव नारायण सिंह जी वकील (गयाजी) का है कि जिनकी श्रद्धा और उदारता से ग्रन्थ हम लोगों के हस्त गत हो रहा है ।

१--१०--१९०४ रामगया प्रसाद ।

आरतिभंजन श्रीमहावीराष्टक ।

शैल सभीत बसै "शुभ कंठ" दियो तेहि बन्धु स्वधाम निकारी। ताहि मिलाइ सिया पति से, करवाइ मिताइ रु "बालि" सँहारी ॥ कीन्ह सुखी, कपिराज बनाय, दिवाय धनादिक तख्त बिठारी। "गोप्यअली" जग ख्यात अहै कपि! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ १ ॥

खोजत सीय सबै कपि भालु पियासे अचेत भए बन भारी । तौ चढ़ि शैल बिलोकेउ दीख पस्यो इक भूर बड़ो बपि भारि ॥ बेगि लिवाइ गए सबहीं तहँ प्राण रख्यो जु पियाइ सुबारी। गोप्यअली जग ख्यात अहै कपि ! आरति भंजन रीति तिहारी ॥ २ ॥

शोच पस्यो सबहीं जब सागर कूल बिना सुधिपाय बिचारी। ताहि समै शुचि ऋक्ष पती बल तेज तुम्हार सुनायौ प्रचारी ॥ मांगि निदेश चले दिशि लंक, बिलोकि भए कपि ऋक्ष सुखारी । गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ ३ ॥

सीय जबै कृत रावण व्याकुल होइ, चहैं तन आपन जारी । मांगेउ आग अशोक ते, वाहि समै चट तूं दिय मुद्रिक डारी ॥ आपन रूप दिखाइ, सुनाइ सँदेश, प्रभू दुख शोक निबारी । गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि ! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ ४ ॥

शक्ति लगी जब "लच्छन" के प्रभु सेन समेत हि देखि दुखारी । धाम समेत "सुखेन" हि लाय, बहोरि महीधर द्रोन उपारी ॥ बैद्य पिछानि पिलायेउ मूरि, उठे चट भा सबहीं सुख भारी । गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि ! आरति भंजन रीति तिहारी ॥ ५ ॥

. धारि "विभीषण" रूप जबै "महिरावण" आएउ सेन मँझारी । कांधे चढ़ाइ गयो दोउ भाइ लै, सेन समस्त पस्यौ दुखभारी ॥ वाहि समै तुम जाइ पताल ले आइ दोऊ प्रभु, दुष्टहि मारी । गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि ! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ ६ ॥

बैठि कुशासन "केकइनन्दन" शोकित चाहत प्रान निकारी । ताछिनु जाय, सुनाये "सिया युत लच्छन आवहिं क्षेम खरारी" ॥ स्रौन सुने, उठि तोहि मिले,

दुख भाजि सबै भयो जी रखवारी। गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि ! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ ७ ॥

भक्तन पै जब गाढ़ पखो अरु व्याकुल ह्वै कपि ! तोहि पुकारी। नाशेउ क्लेश तबै अंजनीसुत ! सो किय देर क्यों ? बेर हमारी ॥ जो मम देखहुगे अघ अवगुण, तौ कलपांत न होइ उबारी। गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि ! आरति भंजन रीति तिहारी ॥८॥

(कवित्त)

"लोचत तिहारे दुख मोचन हमारे हैं"

जौन जादुभरे नैन मिथिलापुरी में जाय, नगर निवासिन बिकल करि डारे हैं। खिरकी अटारी औ झरोखे लागि नारी सबै व्याकुल निहारैं नेकु लाज ना सँभारे हैं॥ स्ववश करण की सुशक्ति, ही कहां लो कहौं, संग २ फिरैं देखो शिशहु बेचारे हैं। जाके धौल यश कवि कोविद पुकारे, वेई लोचन तिहारे, दुख मोचन हमारे हैं ॥१॥

हेरवे जेहि ओर नैन कोर मति भोर भयो कैसो चित्त चोर आयो शोर पुर सारे है। प्रेमी जन तुरत ही प्रेम रंग बोर उठे भव के मोर तोर तें तुरत भये न्यारे हैं। छुटि गई शंका यम जोर ना चलत कछु संसृत बिहाय भ्रम भांड फोरि डारे हैं। त्रैगुन तें तारैं हेतु तीन रंग धारे वोई लोचन तिहारे दुख मोचन हमारे हैं ॥ २ ॥

जौने कृपा कोर तें निहारि प्रहलाद घोर बिपति समुह के झकोर तें उबारे हैं । देखतहीं, संकट सुकंठ केर दूरि भयो; आगम निगम में प्रसिद्ध जग सारे हैं। बंक भृकुटी तें कियो रंक बिप्र राव सम, कौन नहीं जानै ऐसे चरित तिहारे हैं ॥ दीन* हितकारे, जाहि सन्त हैं पियारे वेई लोचन तिहारे, दुख मोचन हमारे हैं ॥ ३ ॥ (*रामगथाप्रसाद)

मन में मनन को न काज कछु है विशेष, चित्त में न चिन्तवन, जोग कष्ट सारे हैं । काहु तिय केर बध करिबो परैगो नाहिं, कर तें उठायबे को बोझ नहिं भारे हैं ॥ सैन के एकत्रित को नेकहु प्रयोजन ना, युद्ध हेतु लांघिबो पयोनिधि ना खारे हैं । जौने कृपा दृष्टि तें निकारे बहु कष्ट, वेई लोचन तिहारे दुख मोचन हमारे हैं ॥ ४ ॥

मीनवत भक्त प्रेमबारि में मगन देखे; खंज सम कहि केते सगुन बिचारे हैं । जनमन बन में फिरे ते मृग सम कहे; हर हिय सर में कमल रतनारे हैं ॥ बेद उपमा ते चारि फल के देवैया दुख दारिद हरैया कबि कोबिद पुकारे हैं ॥ जापै जननी ने केते मणि वारि डारे वेई लोचन तिहारे दुख मोचन हमारे हैं ॥ ५ ॥

श्रीसीतारामनाममंजरी ।

(छन्द रोला)

जयति बिमल बिज्ञान बपुष बिज्ञान निधाना ।
जयति तुरीया जय तुरीय पर परा प्रधाना ॥ १ ॥
जय परमात्मा ब्रह्म जयति परतमासुशक्ती ।
जय प्रेमा अनुरक्ति प्रदा प्रद परा सुभक्ती ॥ २ ॥
जय जगदीशा जगदधीस जनु पुरुष प्रकृति तनु ।
जयति जगत कारण निमित्त जुगजनक जननि जनु ॥ ३ ॥
जय बामांगी दक्षिणांग आसीन अभंगा ।
जय गौरांगी स्यामलांग छबि जमुना गंगा ॥ ४ ॥
जय भगवती भगवान परस्पर प्राण प्रिया प्रिय ।
जयति किशोरी जय किशोर बपु नित्य दिव्य कृय ॥ ५ ॥
जय प्रभु वेदप्रशंसनीय जय श्रुतिप्रशंसनी ।
शिव मनमानस हंस उमा मानस सुहंसनी ॥ ६ ॥
जय संसेवित बिष्णु जयति · जयरमासेविता ।
जयति राम देवाधिदेव सीताधि देवता ॥ ७ ॥
जयति बिधिबंदित चरण जयति बिधि जुवति वन्दिता ।
जयति अनिंदित सुजस जयति कीरति अनिंदिता ॥ ८ ॥
जय तारक तारिणी जीव भय हारिणि हर्ता ।
उतपति पालन प्रलय जगत् कारिणि जय कर्ता ॥ ९ ॥
जय नित्या जय नित्य जयति आनंद प्रमोदा ।
जय चिद्रूपा चित्स्वरूप दंपती बिनोदा ॥ १० ॥

नमो अमित अवतार निजेच्छित जनहित कारी ।
परा शक्ति प्रणमामि जाहि गहि बहु बपुधारी ॥ ११ ॥
नमो अमित अवतार सिरोमणि सियाबिहारी ।
शक्ति सहित अवधेश जनक कृत जनक सुखारी ॥ १२ ॥
नमो नमो शिशुचरित सहानुज करन कृपाला ।
नमो भगिनि जुत बाल केलि अनुसरनि दयाला ॥ १३ ॥
नमो बिबाह बिनोद बिधायक सिय रघुनायक ।
चित्रकूट बन केलि करन सुर मुनि सुख दायक ॥ १४ ॥
जयति जुगल करुनानिधान नरलीला कारी ।
सहि दुख दुष्टन नास करन भक्तन भयहारी ॥ १५ ॥
जय सिय रघुबर लषन सतिय कपि यान बिराजी ।
अवधागत पुर जन जननी भरतादि निवाजी ॥ १६ ॥
जय बिजयी राजाधिराज सीतापति स्वामी ।
जय जुग सीताराम शरण जन मन बिस्रामी ॥ १७ ॥
जयति भरत सौमित्रि शत्रुहन हनुमत सेवित ।
चामरब्यजन सुछत्र आदि धरि छबि लषि लोभित ॥१८॥
जय जय जय श्रीरामप्रिया श्रीसीता प्रिय जय ।
जय श्रीसीताकांत राम कांता करुणामय ॥ १९ ॥
जय श्रीसीता प्राणनाथ श्रीराम पियारी ।
जय रघुराज जीवनी जानकि जीवन भारी ॥ २० ॥
जय जानकी निवास जयति रघुराज निवासा ।
जय सीतासुख रास जयति रघुबर सुखरासा ॥ २१ ॥
जय जय जय श्रीरामवल्लभा जय सिय बल्लभ ।
जयति राम रसिका अजोनिजानायक सुल्लभ ॥ २२ ॥

जयति राम रमणी बिदेहजा रमण रसीले ।
जय रघुबर भामिनी भूमिजा रसिक सुशीले ॥ २३ ॥
जय जय श्री रघुबीर मोहनी महिजा मोहन ।
जय रघुबर प्रियतमा जयति सियप्रियतम सोहन ॥ २४ ॥
जय जय सीताराम जानकी राघवजय जय ।
जय मैथिलि रघुनाथ स्याम स्यामा सोभामय ॥ २५ ॥
जय श्री रघुकुल केतु जयति निमि वंस पताका ।
दशरथ जलनिधि चन्द्र जनक बारिधि बिधुराका ॥ २६ ॥
नमो नमो श्रीराम नौमि सिय पद अरबिंदा ।
मुनिजन मानस भृङ्ग संग सेवित सानन्दा ॥ २७ ॥
नौमि दिब्यदामिनि सुदेह मिलि थिर घन स्यामा ।
संजुत छबि शृङ्गार रसाधिप सरिस ललामा ॥ २८ ॥
नमो सुपट परिधान पीत स्यामल अभिरामा ।
भूषण "मणि रसराम" जटित मोहन रति कामो ॥ २९ ॥
नमो जीव सुख दयन नयन राजीव बिसाला ।
असितनलिन नयना नमामि छबि बसित रसाला ॥ ३० ॥
जय मिथिलाधिप सुता अजोध्याधिप सुत दम्पति ।
जयति सुनयना सुख बिभूति कौशल्या सम्पति ॥ ३१ ॥
जय सीरध्वज सुजसध्वजा दसरथ जस ध्वज बर ।
जयति सुनयना कीर्ति करा कौसिला कीर्ति कर ॥ ३२ ॥
जयति सख्य रस रूप जयति रस सखी स्वरूपा ।
जयति भक्तबत्सल अनूप बत्सला अनूपा ॥ ३३ ॥
जयति भरत शत्रुघ्न भ्रात लक्ष्मण सुख दाता ।
जय मांडवि श्रुतिकीर्ति भगिनि उर्मिला सुख्याता ॥ ३४ ॥

जय कांचनबन केलिरता जय बनप्रमोद रुचि ।
जै सरजू जलपान निरत प्रिय कमला जल सुचि ॥३५॥
जय जानकी अनन्य जयति रति रामानन्या ।
जै निज पत्नी ब्रत सुधन्य पातिब्रत धन्या ॥ ३६ ॥
जय सीता सुचिगिरा अर्थ जल राम बीचि जय ।
जय दम्पति जुगनाम रूप समुझे एकहि मय ॥ ३७ ॥
जय जय श्रीरघुबीर बधू जय सिय बर सुन्दर ।
गहे कंज शर चाप बसे हनुमत हिय मन्दिर ॥ ३८ ॥
इति "श्रीसीताम नाम मंजरी" ललामा ।
बिरचित "जन रस राम मणी" माला अभिरामा ॥ ३९ ॥
रसिक सुजन गल धारि लहैं सुखमा सुन धामा ।
सम माधुर्य्य परत्व नाम जुत जयति प्रणामा ॥ ४० ॥
दुख हर सुख कर पढ़त "नाम मंजरी" सनेमा ।
सुनत सुमति गति देनि भक्ति सीता पति प्रेमा ॥ ४१ ॥
जय जय सरयू अवध अवधवासी सब जीवा ।
जय जय श्री गुरु सन्त रामरति प्रद सुख सीवा ॥ ४२ ॥

दोहा ।

सीताराम शरण अधम जन भगवान प्रसाद ।
"युगल नाम यश मंजरी" छपवायो छकि स्वाद ॥

इति श्री रामरसरंगमणि कृत श्री सीतारामनाममंजरी सम्पूर्णा ।

श्रीअयोध्या प्रमोद बन, संबत् १९६१

श्रीजानकी प्राणबल्लभ जी के

चरण सरोज में श्री जनकपुर सुन्दरियों का प्रेम।

(कबिवर पण्डित राम गया प्रसाद जी।)

(दो॰) हिमतनया सुत हृदय धरि, सुमिरि उमा बृषकेतु।
प्रेम दशा बर्णन करौं, हरि-प्रेमिन के हेतु॥

(क॰) आयो ऋतु शिशिर, न आयो श्याम! काहे सखि? सह्यो नहिं जात यह कष्ट मन मेरे ते। पड़े जब पाला, सो तो लागे मोहि भाला ऐसो, बिनु जानकीश तन कांपत सबेरे ते॥ भयो सोइ हाल, मानो परी मीन जाल बीच, रहै जिमि दुःखी मोर बिना घन घेरे ते। एक नहीं श्याम, दूजे कामहूं सतावत है, सुने ऋतु नाम तनु उड़ै बायु प्रेरे ते॥ १॥

(सो॰) शिशिर गयो सखि बीत, अब बसन्त करिहै कहा?
"नेति नेति" श्रुति गीत, अन्त पूछिये काहि सन॥

(क॰) उतै गयो रघुराज!! इतै आयो ऋतुराज, संग काम की समाज, मोहि मारत है बान। उतै श्याम गये भूल, इतै डाहत त्रिशूल, तन भयो जिमि तूल, बिरहानल समान॥ आई उत सौं न पाती, इतै दहै नित छाती, कब होत दिन राती मोहि परत न जान। उतै मोहे सियाकन्त, इतै होत प्राण अन्त, सखी! आयो का बसन्त, बिधि भेज्यौ दुःख खान॥ २॥

(दो॰) सखि! बसन्त को अन्त है, ग्रीषम पहुँच्यो आय।
अजहूं सियपिय ना मिले, ब्यथा कौन बिधि जाय॥

(सवैया) ग्रीषम के ऋतु में नित ही, गिरिनयनन ते सखि! नीर बहैं। सर सूखि गये, द्रुम मूर्च्छि परे, बिरहिन गृह में कहु कैसे रहैं॥ बहै बाव तो घाव लगै तन में, श्रौ सुधाकर देखि कै देह दहैं। अजहूं नहिं प्रान पयान करैं! इतनो दुख दारुन नित्य सहैं॥ ३॥

(सो०) ग्रीषम कीनो गौन, बर्षा ऋतु आई अवनि।
लगै भयावन भौन, श्री जानकिजीवन बिना॥

(क०) ग्रीषम गवन कीन्हो, बरषा अवनि आयो, लागत भयावन भवन बीच भारी है। सुने कोइल की कूक, हिया होत दुई टूक, सखि! उठे घटा कारी, मोहि लागत कटारी है॥ मोर करै शोर, घन घोर लखि बिपिन में, ताते आलि! हिया बीच उठै चिनगारी है। रैन अंधियारी तें सहमि सुकुमारी कहै, काहे? दनुजारी मोहि निपट बिसारी है॥ ४॥ सावन न आयो, विधि तावन पठायो मोहि, बिना मनभावन मैं कौन काज करिहौं। "सरयू" दुकूलैं में हिंडोल कैसे झूलैं? यह होत हिय शूलैं! कहु कैसे के उबरि हौं॥ मीन जल हीन ह्वै रहत नित दीन जैसे, कहो अब ताहि बिधि निशिदिन जरिहौं। हे रे मेरी आली! हाली प्यारे को दिखाव मोहि; नाहिं तो भुजाली आज हिया बीच मरिहौं॥ ५॥

(सवैया) लखि कारी घटा, चढ़ि जात अटा, खन

आवत आंगन मों अकुलाई। खन द्वार पै जाइ पुकारत हैं कतहूं नहिं देखत हैं रघुराई। ढुंढु नयनन ते नित नीर बहैं अब, मानहु मेघ मघा झरिलाई। बिनु प्रानपिया, जिया व्याकुल होत, यथा खग पंख बिना पछताई ॥ ६ ॥ निस पेखत ही मन होत यहै, बिस खाउं, पै आनि कै देत न कोई। सपनेउं कहूं भेंट जो होतै, सखी! कहतिउं समुझाई यथा बिधि रोई ॥ बिधना कर काह? बिगारे रहिउं, इतना दुख दारुन देत है जोई। तड़पै करि आह कहै नितही, बरसात गयो बर साथ न सोई ॥ ७ ॥

(दो०) बरषा को करषा मिट्यौ, मृगनयनी अकुलाय।
दरद अधिक तन में बढ़यौ, सखी! शरद ऋतु पाय॥

(क०) सर्द ऋतु आई, महि मध्य छबि छाई, जग अति हरषाई, सुधा स्रवै उड़ुराई है। सुधा केर बुंद, बिष बुंद ते सरस, सखि! होत दुःख द्वन्द मोहि बिना रघुराई है॥ कहां जाउं कहा करूं? कहत न बनै कछु कहौ सखि! काहे? हरि निपट भुलाई है। एती कठिनाई ऋतु केर लखि पाई, अब कौने काज? नयन प्राण राख्यौ-बिलमाई-है ॥ ८ ॥

(दो०) शरद गरद मोहि करि गयो, जानकि-बर बिनु आज
दीन कहत मन धीर धरु, तोहि मिलिहैं रघुराज

(सवैया) हे हिम! काहे? सतावसि मोहि, सदा बिनवौं कर जोरि के तोही। करु सोई प्रसङ्ग बचै मम

अङ्ग, अनङ्ग तरङ्ग है डाहत मोही ॥ निशि कारी भयानक भारी लगी भभरौं सुनि चातक बोलत जोही। तोहि पूजि सप्रेम निहाल करौं, जबहीं सियकन्त दिखाय दै मोही ॥ ९ ॥

(सो०) षट ऋतु बारह मास, मोहि तलफत बीत्यौ सखी।
अजहुं न पूजी आस, रूपराशि रघुबीर बिनु ॥

(क०) आयी मलमास पिया मिलन की आस, सखी! बीती सब त्रास, हिया मोद अति छायो है। मिल्यौ जानकीश, जापै कोटि काम वारि डारौं, ऐसो सुख भयो मानो रंक धन पायो है॥ अंधहि बहोरि नेत्र पाइबे को हर्ष जेतो, ताते सुख अधिक अधिक अधिकायो है। सखिन ने पीय पाय, कीनो है निहाल, "दीन"-भाल को लिख्यौ कुअंक बिधिको मिटायो है ॥ १० ॥

(दो०) "मिथिला" युवतिन प्रीति को, धन्य कहत ब्रह्माद।
यांचत दीन सप्रेम तिन कृपाकटाक्ष प्रसाद ॥

